BAPS(N)-202

भारतीय राजव्यवस्था

Indian Political System

राजनीति विज्ञान विभाग
समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

BAPS(N)-202

भारतीय राजव्यवस्था

(Indian Political System)

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**नियति रावत** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक इकाई संख्या इकाई लेखक इकाई संख्या

डॉ. शिव प्रकाश राय, राजकीय महाविद्यालय, गरुण, बागेश्वर– पिन 263651	**1,2,3**
डॉ. अजीत कुमार, प्रवक्ता-राजनीती विज्ञान, आर.आर.पी.जी.कालेज, अमेठी	**5**
डॉ सूर्यभान सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, इलाहबाद विश्वविद्यालय	**4,6,7,8,9,10,11,12,13,15**
डॉ. जाकिर हुसैन, सेवानिवृत्त सह प्राध्यापक, रा.महाविद्यालय, रानीखेत	**14**
डॉ. घनश्याम जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर, लोक प्रशासन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी	**16**

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2025

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :------------------------------------

संस्करण:2020, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम

भारतीय राजव्यवस्था **बी.ए.पी.एस. (एन)-202**

इकाई क्र.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड-1	**भारतीय संविधान: एक परिचय**	
1	संविधान का विकास	1-16
2	संविधान निर्माण, संविधान के स्रोत	17-29
3	संविधान का दर्शन	30-45
4	भारतीय संविधान का स्वरुप	46-56
खण्ड-2	**प्रमुख संवैधानिक उपबंध**	
5	नागरिकता	57-72
6	मूल अधिकार और मूल कर्तव्य	73-88
7	राज्य के नीति-निदेशक तत्व	89-97
8	संविधान संशोधन प्रक्रिया	98-104
खण्ड-3	**संघीय शासन**	
9	राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति	105-120
10	प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद	121-129
11	संसद	130-140
12	न्यायपालिकाः सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय	141-149
13	केंद्र-राज्य संबंध	150-161
खण्ड-4	**राज्य सरकार और स्थानीय स्वशासन**	
14	राज्यपाल, मुख्यमंत्री,मंत्रिपरिषद	162-174
15	राज्य विधान मण्डल	175-182
16	स्थानीय स्वशासन: पंचायती राज संस्थाएं एवं नगरीय स्वशासन	183-195

इकाई 1 :संविधान का विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संविधान का तात्पर्य एवं परिभाषा
1.3.1 संविधान का अर्थ
1.3.2 संविधानवाद का अर्थ एवं संवैधानिक विधि
1.3.3 भारत का संविधान
1.4 संवैधानिक विकास का इतिहास
1.4.1 प्राचीन भारत में संवैधानिक प्रणाली
1.4.2 औपनिवेशिक काल में संवैधानिक विकास
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

भारतीय संविधान को समझने के लिए यह जरूरी है कि संविधान क्या है, इसका विकास कैसे हुआ, संवैधानिक विधि का क्या तात्पर्य है तथा संविधानवाद का ज्ञान भी जरूरी है। किसी भी देश के सुचारूपूर्ण शासन प्रणाली के संचालन हेतु कुछ नियमो - कानूनो का होना अनिवार्य है। चाहे वह लिखित हो या अलिखित। इकाई के प्रारम्भ में आप संविधान क्या है? संवैधानिक विधि, संविधानवाद एवं भारत के संविधान की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

वही इकाई के उत्तरार्द्ध में संवैधानिक विकास के इतिहास के अन्तर्गत प्राचीन भारत में संवैधानिक शासन प्रणाली तथा औपनिवेशिक शासन काल में संवैधानिक विकास को आप आसानी से समझ सकेंगे।

1.2. उद्देश्यः-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1.संविधान का अर्थ समझ सकेंगे।

2.संविधानवाद, संवैधानिक विधि को समझ सकेंगे।

3.प्राचीन भारतीय संवैधानिक शासन प्रणाली एवं भारतीय गणतंत्र को जान सकेंगे।

4. औपनिवेशिक काल में कैसे संवैधानिक विकास हुआ, इसको समझ सकेंगे।

5. स्वतंत्रता आन्दोलन का भारतीय संविधान के विकास में योगदान को समझ सकेंगे।

1.3 संविधान का तात्पर्य एवं परिभाषा

हर देश में अलग-अलग समूह के लोग रहते है । पर दुनिया भर में लोगों के बीच विचारों और हितों में फर्क रहता है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली हो या न हो पर दुनिया के सभी देशो को ऐसे बुनियादी नियमों की जरूरत होती है। यह बात सिर्फ सरकारो पर लागू नही होती। हर संगठन के कायदे - कानून होते है, संविधान होता है। इस तरह आपके इलाके का कोई क्लब हो या सहकारी संगठन या फिर राजनैतिक दल, सभी को एक संविधान की जरूरत होती है। जैलीनेक ने संविधान की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए कहा कि - "संविधानहीन राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। संविधान के अभाव में राज्य, राज्य न होकर एक प्रकार की अराजकता होगी"। आस्टिन के अनुसारः- "संविधान सर्वोच्च शासन के ढाँचे को निश्चित करता है"। गिलक्राइस्ट के अनुसारः- "संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है, जिनके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगो में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते है"। के0सी0 व्हीयर के अनुसारः-"संविधान का प्रयोग संपूर्ण शासन-व्यवस्था के लिए किया जाता है। संविधान में निहित नियम एवं सिद्धान्त सरकार को नियमित करते है"।

1.3.1 संविधान का अर्थ

किसी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का वह बुनियादी सांचा-ढांचा निर्धारित करता है जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगो की स्थापना करता है, उनकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधो का विनियमन करता है।

संविधान लिखित नियमों की ऐसी किताब है जिसे किसी देश में रहने वाले सभी लोग सामूहिक रूप से मानते है। संविधान सर्वोच्च कानून है। जिससे किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगो के बीच के आपसी संबंध तय होने के साथ-साथ लोगो और सरकार के बीच के संबंध भी तय होते है। लोकतंत्र में प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। आदर्शतया जनता ही स्वयं अपने ऊपर शासन करती है। किंतु प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलताओं तथा राष्ट्ररूपी राज्यों के बढ़ते हुए आकार के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र अब संभव नहीं रहा। जनता अपनी प्रभुसत्ता का सबसे पहला तथा सबसे बुनियादी अनुप्रयोग तब करती है, जब वह अपने आप को एक ऐसा संविधान प्रदान करती है जिसमें उन बुनियादी नियमों की रूपरेखा दी जाती है। जिनके अंतर्गत राज्य के विभिन्न अंगो को कतिपय शक्तियां अंतरित की जाती है और जिनका प्रयोग उनके द्वारा किया जाता है। संघीय राज्य व्यवस्था में संविधान संघ स्तर पर और दूसरी ओर राज्यों या इकाइयों के स्तर पर राज्यों के विभिन्न अंगो के बीच शक्तियों का निरूपण, परिसीमन ओर वितरण करता है।

किसी देश के संविधान को इसकी ऐसी आधार विधि भी कहा जा सकता है, जो उसकी राज्य-व्यवस्था के मूल सिद्धान्त विहित करती है और जिसकी कसौटी पर राज्य की अन्य सभी विधियों तथा कार्यपालक कार्यो को उनकी विधि मान्यता तथा वैधता के लिए कसा जाता है। प्रत्येक संविधान उसके संस्थापको की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित होता है। संविधान समाज में साथ रह रहे विभिन्न तरह के लोगो के बीच जरूरी भरोसा और सहयोग विकसित करता है। यह स्पष्ट करता है कि सरकार का

गठन कैसे होगा और किसे फैसले लेने का अधिकार होगा तथा यह सरकार के अधिकारो की सीमा तय करता है और हमे बताता है कि नागरिकों के क्या अधिकार है?

जिन देशो में संविधान है, वे सभी लोकतांत्रिक शासन वाले हो यह जरूरी नहीं है। लेकिन जिन देशों में लोकतांत्रिक शासन वाले हो यह जरूरी नहीं है। लेकिन जिन देशों में लोकतांत्रिक शासन है वहॉ संविधान का होना जरूरी है। हर लोकतांत्रिक देश में शासन व्यवस्था में एक लिखित संविधान का होना अनिवार्य माना जाता है।

संविधान को एक जड़ दस्तावेज मात्र मान लेना ठीक नहीं होगा क्योंकि संविधान केवल वही नहीं है, जो संविधान के मूल पाठ में लिखित है। संविधान सक्रिय संस्थाओ का एक सजीव संघट्ट है। यह निरन्तर पनपता रहता है, पल्लवित रहता है। हर संविधान इसी बात से अर्थ तथा तत्व ग्रहण करता है कि उसे किस तरह अमल में लाया जा रहा है। बहुत कुछ इस पर निर्भर है कि देश के न्यायालय किस प्रकार उसका निर्वचन करते है। तथा उसके अमल में लाने की वास्तविक प्रक्रिया में उसके चारो ओर कैसी परिपाटियाँ तथा प्रथाएं जन्म लेती है।

1.3.2. संविधानवाद का अर्थ एवं संवैधानिक विधि

संविधानवाद उन विचारों व सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है, जो उस संविधान का विवरण एवं समर्थन प्रस्तुत करते है; जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना सम्भव होता है। संविधानवाद में शासन संविधान के अनुसार संचालित होना चाहिए। और उस पर ऐसा प्रभावशाली नियंत्रण कायम रहे, जिससे उन मूल्यो व राजनीतिक आदर्शों की सुरक्षा को आघात न पहुचे, जिनके लिए जनता ने राज्य के बंधन को स्वीकारा है। संविधानवाद कानून की सर्वोच्चता पर आधारित है; व्यक्ति की सर्वोच्चता पर नहीं।

संविधानवाद एक ऐसी राज्य व्यवस्था की संकल्पना है, जो संविधान के अन्तर्गत हो तथा जिससे सरकार के अधिकार सीमित और विधि के अधीन हो। स्वेच्छाधारी, सत्तावादी अथवा सर्वाधिकार वादी जैसे शासनो के विपरीत, संवैधानिक शासन प्रायः लोकतांत्रिक होता है तथा लिखित संविधान के द्वारा नियमित होता है। लिखित संविधान में राज्य के विभिन्न अंगो की शक्तियों तथा उनके दायित्वों की परिभाषा तथा सीमांकन होता है। लिखित संविधान के अन्तर्गत स्थापित सरकार सांकुश सरकार ही हो सकती है। लेकिन, यह भी सम्भव है कि किन्ही देशो में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है लिखित संविधान तो हो लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था न हो। कहा जा सकता है कि उनके पास संविधान है किन्तु वहॉ पर संविधानवाद नहीं है। ऐसे भी उदाहरण है, जैसे ब्रिटेन, जहा लिखित संविधान नहीं है किन्तु लोकतंत्र और संविधानवाद है।

संवैधानिक विधि

संवैधानिक विधि सामान्यतया संविधान के उपबन्धों में समाविष्ट देश की मूलभूत विधि की द्योतक होती है। विशेष रूप से इसका सरोकार राज्य के विभिन्न अंगो के बीच और संघ तथा इकाइयो के बीच शक्तियों के वितरण के ढाँचे की बुनियादी विशेषताओं से होता है। किंतु आधुनिक संवैधानिक विधि में, खासतौर पर स्वाधीन प्रतिनिधिक लोकतंत्रो में, मूल मानव अधिकारो और नागरिकों तथा राज्य के परस्पर संबन्धों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। इसके अलावा, सवैधानिक विधि के स्त्रोतों में संविधान का मूल पाठ ही सम्मिलित नहीं होता, इसमें संवैधानिक निर्णय जन्म विधि, परिपाटिया और कतिपय संवैधानिक उपबंधो के अन्तर्गत बनाये गए अनेक कानून भी सम्मिलित होते है।

1.3.3 भारत का संविधान

भारतीय संविधान भारत के लोगो द्वारा बनाया गया तथा स्वंय को समर्पित किया गया। संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर, 1949 को अंगीकार किया गया था। यह 26 जनवरी, 1950 से पूर्णरूपेण लागू हो गया। संविधान में 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। आज के समय संविधान में बहुत संशोधन हो चुके है। संविधान में समय-समय पर संशोधन हुए, जिसमें कुछ अनुच्छेद संशोधनों के द्वारा निकाल दिए गए और कुछ के साथ क, ख, ग आदि करके नए अनुच्छेद जोड़ दिए गए, किंतु संदर्भ में सुविधा की दृष्टि से, संविधान के भागो और अनुच्छेदों की मूल संख्याओं में परिवर्तन नहीं किया गया। इस समय गणना की दृष्टि से कुछ अनुच्छेद (1-395 तक) वस्तुतया 445 हो गए है। अनुसूचियां 8 से बढ़कर 12 हो गयी है। तथा पिछले 75 सालो में 100 से ज्यादा संविधान संशोधन विधेयक पारित हो चुके है।

अभ्यास प्रश्नः-

1.संविधान क्या है?
2.संविधानवाद का अर्थ बताइये।
3.संवैधानिक विधि से क्या तात्पर्य है?
वस्तुनिष्ठ प्रश्न
1.भारत में सर्वोच्च माना गया है-
(अ) न्यायपालिका को (ब) संविधान को
(स) संसद को (द) राष्ट्रपति को
2. भारत के संविधान को किस तिथि को स्वीकार किया गया?
(अ) 26 नवम्बर, 1950 (ब) 26 जनवरी, 1950
(स) 26 जनवरी 1949 (द) 26 नवम्बर, 1949

1.4. संवैधानिक विकास का इतिहास

किसी देश के संविधान के भवन निर्माण सदैव उसके अतीत की नींव पर किया जाता है। भारतीय गणतंत्र का संविधान राजनैतिक क्रांति का परिणाम नहीं है। यह जनता क मान्य प्रतिनिधियों के निकाय के अनुसंधान और विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप जन्मा है इस निकाय ने प्रशासन की विद्यमान पद्धति में सुधार लाने का प्रयत्न किया। अतः किसी भी विद्यमान तथा लागू संविधान को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि तथा उसके इतिहास को जानना जरूरी होता है।

1.4.1 प्राचीन भारत में संवैधानिक शासन-प्रणाली

लोकतंत्र, प्रतिनिधि-संस्थान, शासकों की तानाशाही शक्तियों पर अंकुश और विधि के शासन की संकल्पनाए प्राचीन भारत के लिए अपरिचित नहीं थी। धर्म की सर्वोच्चता की संकल्पना विधि के शासन या नियंत्रित सरकार की संकल्पना से भिन्न नहीं थी। प्राचीन भारत में शासन धर्म से बंधे हुए थे, कोई भी व्यक्ति धर्म का उल्लंघन नहीं कर सकता था। प्राचीन भारत के अनेक भागों में गणतन्त्र शासन प्रणाली, प्रतिनिधि-विचारण-मण्डल और स्थानीय

स्वशासी संस्थाए विद्यमान थी और वैदिक काल (3000-1000 ई0 पू0) से ही लोकतांत्रिक चिंतन तथा व्यवहार लोगो के जीवन में था।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सभा (आमसभा) तथा समिति (वयोवृद्धों की सभा) का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राहमण, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, महाभारत, अशोकस्तम्भों पर उत्कीर्ण शिलालेख, उस काल के बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ और मनुस्मृति- ये सभी इस बात के साक्ष्य है कि भारतीय इतिहास के वैदिकोत्तर काल में अनेक सक्रिय गणतंत्र विद्यमान थे।

ई0पू0 चौथी शताब्दी में 'क्षुद्रक मल्ल संघ' नामक गणतंत्र-परिसंघ ने सिकन्दर का मुकाबला किया था। पाटलीपुत्र (पटना) के निकट लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। वह राज्य एक गणतंत्र था उसका शासन एक सभा चलाती थी। उसका एक निर्वाचित अध्यक्ष होता था। और उसे नायक कहा जाता था।

दशवी शताब्दी में शुक्राचार्य ने 'नीतिसार' की रचना की जो संविधान पर लिखी गई पुस्तक है। इसमें केन्द्रीय सरकार के संगठन एवं ग्रामीण तथा नगरीय जीवन, राजा की परिषद और सरकार के विभिन्न विभागों का वर्णन किया गया है। गणराज्य, निर्वाचित राजा, सभा और समिति जैसे लोकतांत्रिक संस्थान बाद में लुप्त हो गए। किंतु ग्राम स्तर पर ग्राम संघ, ग्राम सभा अथवा पंचायत जैसे प्रतिनिधि - निकाय जीवित रहे और अनेक हिन्दू तथा मुस्लिम राजवंशो के शासन के दौरान तथा अंग्रेजी शासन के आगमन तक कार्य करते रहे और फलते-फूलते रहे।

1.4.2. औपनिवेशिक काल में संवैधानिक विकास

31 दिसम्बर 1600 को लंदन के कुछ व्यापारियों द्वारा बनायी गयी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महारानी एलिजाबेथ से शाही चार्टर प्राप्त कर भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ क्षेत्रों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया। औरंगजेब की मृत्यु (1707) और 1757 के प्लासी के युद्ध में कंपनी की विजय के साथ ही भरत में अंग्रेजी शासन की नींव पडी।

रेंग्युलेटिंग एक्ट, 1773- 1773 का एक्ट भारत के संवैधानिक इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियन्त्रण के प्रयासो की शुरूआत थी। कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन अब कम्पनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में भारत में कंपनी के शासन के लिए पहली बार एक लिखित संविधान प्रस्तुत किया गया।

चार्टर एक्ट, 1833- भारत में अंग्रेजीराज के दौरान संविधान निर्माण के संकेत 1833 के चार्टर एक्ट में मिलते है। इस एक्ट के अन्तर्गत सपरिषद, गवर्नर-जनरल के विधि-निर्माण अधिवेशनो तथा उसके कार्यपालक अधिवेशनों में अंतर करते हुए भारत में अंग्रेजी शासनाधीन क्षेत्रों के शासन में संस्थागत विशेषीकरण का तत्व समाविष्ट किया गया।

चार्टर एक्ट, 1953- 1853 का चार्टर एक्ट अन्तिम चार्टर एक्ट था। इस एक्ट के अन्तर्गत भारतीय गवर्नर जनरल की परिषद को ऐसी विधायी प्राधिकरण के रूप में जारी रखा गया। जो समूचे ब्रिटिश भारत के लिए विधियां बनाने में सक्षम थी। तथापि इसके स्वरूप तथा संघटन में अनेक परिवर्तन कर दिए गए जिससे कि 'पूरी प्रणाली ही परिवर्तित' हो गयी थी। विधायी कार्यो के लिए परिषद में छः विशेष सदस्य जोडकर इसका विस्तार कर दिया गया। इन सदस्यों को विधियां तथा विनियम बनाने के लिए बुलाई गई बैठको के अलावा परिषद में बैठने तथा मतदान

करने का अधिकार नहीं था। इन सदस्यों को विधायी पार्षद कहा जाता था। परिषद में गवर्नर-जनरल, कमांडर-इन'-चीफ,मद्रास,बंबई, कलकत्ता और आगरा के स्थानीय शासकों के चार प्रतिनिधियों समेत अब बारह सदस्य हो गये थे। परिषद के विधायी कार्यो को इसके कार्यपालक अधिकारो से स्पष्ट रूप से अलग कर दिया गया था। और एक्ट की धारा 23 की अपेक्षाओं के अनुसार उनके इस विशेष स्वरूप पर बल दिया गया था कि सपरिषद गवर्नर जनरल में निहित विधिया और विनियम बनाने की शक्तियों का प्रयोग केवल 'उक्त परिषद की बैठको' में किया जायेगा।

1858 का एक्ट- भारत में अंग्रेजी शासन के मजबूती के साथ स्थापित हो जाने के बाद 1857 कर विद्रोह अंग्रेजी शासन का तख्ता पलट देने का पहला संगठित प्रयास था। उसे अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय गदर तथा भारतीयो ने स्वाधीनता के लिए प्रथम युद्ध का नाम दिया। इस विद्रोह ने, जिसे अन्ततः दबा दिया गया। भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी की व्यवस्था को एक घातक झटका पहुचाया। ब्रिटिश संसद ने कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श करने के बाद, जस नई नीति का आधार होना चाहिए, एक नया एक्ट पास किया। यह एक्ट अंततः 1858 का 'भारत के उत्तम प्रशासन के लिए एक्ट' बना। इस एक्ट के अधीन, उस समय जो भी भारतीय क्षेत्र कंपनी के कब्जे में थे, वे सब क्राउन में निहित हो गए। और उन पर (भारत के लिए) प्रिसिंपल सेक्रेटरी आफ स्टेट के माध्यम से कमी करते हुए क्राउन द्वारा तथा उसके नाम, सीधे शासन किया जाने लगा। किंतु 1858 का एक्ट अधिकाशतः ऐसे प्रशासन - तंत्र में सुधार तक ही सीमित था। जिसके द्वारा भारत के प्रशासन पर इंग्लैण्ड में निरीक्षण और नियंत्रण किया जाना था। इसके द्वारा भारत के प्रशासन पर इंग्लैण्ड में निरीक्षण और नियन्त्रण किया जाना था। इसके द्वारा भारत की तत्कालीन शासन व्यवस्था में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं किया गया।

भारतीय परिषद एक्ट, 1861- 1861 का भारतीय परिषद एक्ट भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना है। यह दो मुख्य कारणो से महत्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसने गवर्नर- जनरल को अपनी विस्तारित परिषद में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को नामजद करके उन्हे विधायी कार्य से संबद्ध करने का अधिकार दे दिया। दूसरा यह कि इसने गवर्नर-जनरल की परिषद की विधायी शक्तियों का विक्रेन्द्रीकरण कर दिया तथा उन्हें बम्बई तथा मद्रास की सरकारों में निहित कर दिया।

गर्वनर-जनरल की कार्यपालिका परिषद का विस्तार कर दिया गया। उसमें एक पांचवा सदस्य सम्मिलित कर दिया गया। उसके लिये न्यायविद होना जरूरी था। विधायी कार्यों के लिये कम से कम छः तथा अधिक से अधिक बारह अतिरिक्त सदस्य सम्मिलित किए गए। उनमें से कम से कम आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना जरूरी था। यद्यपि एक्ट में स्पष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया था, तथापि विधान परिषद के गैर सरकारी सदस्यों में भारतीयों का भी शामिल किया जा सकता था। वास्तव में 1862 में गर्वनर जनरल, लार्ड कैनिन ने नवगठित विधान परिषद मे तीन भारतीयों - पटियाला के महाराजा, बनारस के राजा ओर सर दिनकर राव- को नियुक्त किया । भारत में अंग्रेजी राज की शुरूआत के बाद पहली बार भारतीयों को विधायी कार्य से जाड़ा गया।

1861 के एक्ट में अनेक त्रुटियां थी। असके अलावा यह भारतीय आकांक्षाओं को भी पूरा नहीं करता था। इसने गवर्नर जनरल को सर्पश शक्तिमान बना दिया था। गैर सरकारी सदस्य कोई भी प्रभावी भूमिका अदा नहीं कर सकते थे। न तो कोई प्रश्न पूछा जा सकता था। और न ही बचत मर बहस हो सकती थी। देश में राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति निरंतर खराब होती गई। अनाज की भारी किल्लत हो गई और 1877 मे जबरदस्त अकाल पड़ा। इससे व्यापक असंतोष फैल गया और स्थिति विस्फोटक बन गई। 1857 के विद्रोह के बाद जो दमन चक्र चला, उसके कारण अंग्रजों के खिलाफ लोगो की भावनाएं भड़क उठी थी। इनमें और भी तजी आई जब यूरोपियों और आंग्ल

भारतीयों ने इल्बर्ट विधेयक का जमकर विराध किया। इल्बर्ट विधेयक ये सिविल सेवाओं के यूरोपीय तथा भारतीय सदस्यों के बीच घिनौने भेद को समाप्त करने की व्यवस्था की गयी थी।

भारतीय परिषद अधिनियम 1892- भारतीय और प्रान्तीय विधान परिषदों के बारे में उल्लिखित स्थिति में दो सुधार भारतीय परिषद अधिनियम 1892 द्वारा किये गये। एक तो यह कि (क) भारतीय विधान परिषद मे शासकीय सदस्यों का बहुमत रखा गया किन्तु गैर सरकारी सदस्य बंगाल चैम्बर आफ फामर्स और प्रांतीय विधान परिषद द्वारा नाम निर्देशित होने लगे। प्रांतीय परिषदों के गैर सरकारी सदस्य कुछ स्थानीय निकायों द्वारा नाम निर्दिष्ट किये जाने लगे। ये स्थानीय निकाय थे विश्व विद्यालय, जिला बोर्ड , नगरपालिका आदि।

(ख) परिषदो को राजस्व और व्यय के वार्षिक कथन अर्थात बजट पर विचार विमर्श करने की और कार्यपालिका से प्रश्न पूछने की शक्ति दी गई। इस अधिनियम की विशेषता इसका उद्देश्य है जिसे भारत के लिए अंडर सेक्रेटरी आफ स्टेट ने इस प्रकार स्पष्ट किया था।

''(यह) भारत के शासन का आधार विस्तृत करने और उसके कृत्यो को बढ़ाने के लिए, और गैर-सरकारी तथा भारत के समाज के स्थानीय तत्वो को शासन के काम में भाग लेने का अवसर देने के लिए अधिनियम (है)।''

मोरले-मिंटो सुधार और भारतीय परिषद अधिनियम, 1909

मोरले-मिंटो के सुधार द्वारा प्रतिनिधिक और निर्वाचित तत्व का समावेश करने का पहला प्रयत्न किया गया। यह नामकरण तत्कालीन भारत के लिए सेक्रेटरी (लार्ड मोरले) और वाइसराय (लार्ड मिंटो) के नाम से हुआ। इस सुधार को भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 से लागू किया गया। प्रान्तीय विधान परिषद से सम्बन्धित परिवर्तन प्रगामी थे। इन परिषदो के आकार में वृद्धि की गई और उसमें कुछ निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्य सम्मिलित किए गए जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गया। केन्द्र की विधान परिषद में भी निर्वाचन का समावेश हुआ किन्तु शासकीय बहुमत बना रहा।

विधान परिषदो के विचार-विमर्श के कृत्यो में भी इस अधिनियम द्वारा वृद्धि हुई। इससे उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे बजट या लोकहित के किसी विषय पर संकल्प प्रस्तावित करके प्रशासन की नीति पर प्रभाव डाल सके। कुछ विनिर्दिष्ट विषय इसके बाहर थे। जैसे सशस्त्र बल, विदेश कार्य और देशी रियायतें। 1909 के अधिनियम द्वारा जो निर्वाचन की पद्धति अपनाई गयी उसमें एक बहुत बड़ा दोष था। इसी से पृथकतावाद का बीजारोपण हुआ जिसकी परिणति इस देश के दुखद विभाजन में हुई। मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का विचार और राजनैतिक दल के रूप में मुस्लिम लीग की स्थापना एक ही समय में हुई (1906)। इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसकेपश्चातभारत शासन अधिनियम, 1915 (5 और 6 जार्ज पंचम), अध्याय 61) पारित किया गया। इसका उद्देश्य पूर्ववर्ती भारत शासन अधिनियमों को समेकित करना था। जिससे कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से सम्बन्धित भारत शासन के सभी विद्यमान उपबन्ध एक ही अधिनियम में प्राप्त हो जाए।

मोटेंग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर आधारित भारत शासन अधिनियम, 1919

मोटेंग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर आधारित भारत शासन अधिनियम 1919 में इस बात को स्पष्ट कर देने का प्रयास किया गया था कि अंग्रेज शासक भारतीयों के जिम्मेदार सरकार के ध्येय की पूर्ति तक केवल धीरे-धीरे पहुँचने के आधार पर स्वशासी संस्थाओं के क्रमिक विकास को मानने के लिए तैयार है। संवैधानिक प्रगति के प्रत्येक चरण के

समय, ढंग तथा गति का निर्धारण केवल ब्रिटिश संसद करेगी और यह भारत के किसी आत्मनिर्णय पर आधारित नहीं होगा।

1919 के एक्ट तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों द्वारा तत्कालीन भारतीय संवैधानिक प्रणाली में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। केन्द्रीय विधान परिषद का स्थान राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा विधान सभा (निम्नसभा) वाले द्विसदनीय विधानमण्डल ने ले लिया। हांलांकि सदस्यो को नामजद करने की कुछ शक्ति बनाए रखी गयी। फिर भी प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यो का बहुमत होना अब जरूरी हो गया था।

सदस्यों का चुनाव एक्ट के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के अधीन सीमांकित निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाना था। मताधिकार का विस्तार कर दिया गया था।। निर्वाचन के लिए विहित अर्हताओं में बहुत भिन्नता थी और वे सांप्रदायिक समूह, निवास, और सम्पत्ति पर आधारित थी।

द्वैध शासनः- 1919 के एक्ट द्वारा आठ प्रमुख प्रांतो में, जिन्हे 'गवर्नर के प्रांत' कहा जाता था। द्वैध शासन की एक नई पद्धति शुरू की गयी। प्रांतो में आंशिक रूप से जिम्मेदार सरकार की स्थापना से पहले प्रारम्भिक व्यवस्था के रूप में प्रांतीय सरकारो के कार्य-क्षेत्र का सीमांकन करना जरूरी था। तद्नुसार एक्ट में उपबन्ध किया गया था कि प्रशासनिक विषयों का केन्द्रीय तथा प्रांतीय के रूप में वर्गीकरण करने, प्रांतीय विषयों के संबंध में प्राधिकार स्थानीय शासनों को सौपने, और राजस्व तथा अन्य धनराशियां उन सरकारो को आवंटित करने के लिए नियम बनाए जाए। विषयों का 'केन्द्रीय' तथा 'प्रान्तीय' के रूप में हस्तान्तरण नियमों द्वारा विस्तृत वर्गीकरण किया गया।

1919 एक्ट की खामिया

1919 एक्ट में अनेक खामिया थी। इसने जिम्मेदार सरकार की मांग को पूरा नहीं किया। इसके अलावा, प्रांतीय विधानमण्डल गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के बगैर अनेक विषय क्षेत्रो में विधेयकों पर बहस नहीं कर सकते थे। सिद्धान्त के रूप में, केन्द्रीय विधानमण्डल संपूर्ण क्षेत्र के लिए कानून बनाने के वास्ते सर्वोच्च तथा सक्षम बना रहा। केन्द्र तथा प्रांतो के बीच शक्तियों के बटवारे के बावजूद 'पहले के अत्यधिक केंद्रीय कृत शासन' में बदलने का सरकार का कोई इरादा मालूम नहीं पड़ा। ब्रिटिश भारत का संविधान एकात्मक राज्य का संविधान ही बना रहा।

प्रांतो में द्वैध शासन पूरी तरह से विफल रहा। गवर्नर का पूर्ण वर्चस्व कायम रहा। वित्तीय शक्ति के अभाव में, मंत्री अपनी नीति को प्रभावी रूप से कार्यान्वित नहीं कर सकते थे। इसके अलावा, मंत्री विधानमण्डल के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार नहीं थे। वे केवल गवर्नर के व्यक्तिगत रूप से नियुक्त सलाहकार थे।

कांग्रेस तथा भारतीय जनमत असंतुष्ट रहा और उन्होने दबाव डाला कि प्रशासन को अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनाने के लिए सुधार किए जाए। प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था और आम लोगो के मन में अनेक आशाएं थी। किंतु उनके हाथ लगे दमनकारी विशेष विधायी प्रस्ताव जिन्हें रौलट बिल कहा गया। भारतीय जनमत का व्यापक और जबरदस्त विरोध होने पर भी उन्हें पास कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, गॉधी जी के नेतृत्व में स्वराज के लिए सत्याग्रह, असहयोग और खिलाफत आन्दोलन शुरू किए गये ।

साइमन आयोग

1919 के एक्ट के अधीन, एक्ट के कार्यकाल की जॉच करने तथा उसके संबन्ध में रिपोर्ट देने और सुधार के लिए आगे और सिफारिशे करने के लिए, दस वर्ष बाद 1929 में एक आयोग नियुक्त करने का उपबंध था। व्याप्त

असंतोष को देखते हुए भारतीय संवैधानिक आयोग (साइमन कमीशन) 1927 में अर्थात निर्धारित समय से दो वर्ष पहले ही नियुक्त कर दिया गया लेकिन क्योंकि इसमें सारे के सारे सदस्य अंग्रेज थे, इसलिए इससे भारतीय जनता की भावनाओं को और भी ठेस पहुची ।

पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव

कांग्रेस धीरे-धीरे पूर्ण स्वराज के अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चुकी थी। किंतु कलकत्ता अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि अंग्रेजों को एक वर्ष के अंदर-अंदर डोमिनियन दर्जे की मांग को स्वीकार करने के लिए एक आखिरी मौका दिया जाए। डोमिनियन दर्जे की मांग ठुकरा दिये जाने के बाद कांग्रेस के 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया गया। नमक-कर संबंधी कानून को तोड़ने के आह्वान तथा समुद्र तक पहुचने के लिए गॉधी जी की डांडी यात्रा के साथ ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हो गया ।

गोलमेज सम्मेलन तथा श्वेत पत्रः-अन्ततः सरकार ने संवैधानिक सुधारो पर विचार करने के लिए नवम्बर, 1930 में लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने का निर्णय किया। इसके बाद ऐसे ही सम्मेलन और हुए।

तीन गोलमेज सम्मेलनो के बाद, ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1933 में एक श्वेतपत्र प्रकाशित किया। उसमें एक नए संविधान की रूपरेखा दी गयी थी। इस योजना में संघीय ढॉचे तथा प्रांतीय स्वायत्ता के लिए उपबंध सम्मिलित थे। इसमें केन्द्र में द्वैधशासन तथा प्रांतो में जिम्मेदार सरकारो का प्रस्ताव किया गया था।

ब्रिटिश संसद ने श्वेतपत्र में सम्मिलित सरकार की योजना पर आगे विचार करने के लिए दोनो सदनो की एक संयुक्त समिति का गठन किया। लार्ड लिनलिथगों संयुक्त समिति के अध्यक्ष थे और इसमें कंजर्वेटिव सदस्यों का बहुमत था। ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को इस समिति के सामने गवाह के रूप में साक्ष्य देने के लिए आमन्त्रित किया गया था।

संयुक्त समिति ने नवंबर, 1934 में अपनी रिपोर्ट दी। इसमें इस बात को दोहराया गया थ कि फेडरेशन की स्थापना तभी की जायेगी यदि कम से कम 50 प्रतिशत देशी रियासतें इसमे शामिल होने के लिए तैयार हो जाए।

इस रिपोर्ट के आधार पर एक विधेयक तैयार किया गया और वह 19 दिसम्बर, 1934को ब्रिटिश संसद में पेश किया गया। जब दोनो सदनो ने उसे पास कर दिया और 4 अगस्त 1935 को उसे सम्राट ने अपनी अनुमति दे दी। तो वह भारत शासन एक्ट 1935 बन गया।

भारत शासन एक्ट 1935

भारत शासन एक्ट, 1935 की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसमें ब्रिटिश प्रांतो तथा संघ में शामिल होने के लिए तैयार भारतीय रियासतों की एक 'अखिल भारतीय फेडरेशन' की कल्पना की गयी थी। 1930 के गोलमेज सम्मेलन तक भारत पूर्णतया एक एकात्मक राज्य था और प्रांतो के पास जो भी शक्तियां थी, वे उन्हे केन्द्र ने दी थी। अर्थात प्रान्त केवल केन्द्र के एजेण्ट थे। 1935 के एक्ट में पहली बार ऐसी संघीय प्रणाली का उपबन्ध किया गया। जिसमें न केवल ब्रिटिश भारत के गर्वनरों के प्रान्त बल्कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्त तथा देशी रियासतें भी शामिल हो। इसने उस एकात्मक प्रणाली की संकल्पना को अन्ततः भंग कर दिया जिसके अधीन अब तक ब्रिटिश भारत का प्रशासन होता था। 1919 के संविधान का सिद्धान्त विकेन्द्रीकरण का था, न कि फेडरेशन का ।

नए एक्टो के अधीन, प्रांतो को पहली बार विधि में अपने ढंग से कार्यपालक तथा विधायी शक्तियों का प्रयोग करने वाली पृथक इकाइयों के रूप में मान्यता दी गई। प्रान्त, सामान्य परिस्थितियों में, उस क्षेत्र में केन्द्र के नियंत्रण से मुक्त हो गए थे।

इस एक्ट के अधीन बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया और उड़ीसा तथा सिंध के दो नए प्रांत बना दिए गए। केन्द्र में प्रस्तावित योजना को ध्यान में रखते हुए, गर्वनरों के ग्यारह प्रान्तो को, कतिपय विशिष्ट प्रयोजनों को छोड़कर, केन्द्रीय सरकार तथा सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की निगरानी, निर्देशन और नियन्त्रण से पूरी तरह मुक्त कर दिया गया। दूसरे शब्दो में, प्रान्तों को एक पृथक कानूनी व्यक्तित्व प्रदान किया गया। एक्ट द्वारा परिकल्पित प्रांतीय स्वायत्तता की योजना में प्रत्येक प्रान्त में से एक कार्यपालिका तथा एक विधानमण्डल का उपबंध रखा गया था। प्रांतीय विधानमण्डलों को अनेक नयी शक्तिया दी गयी। मंत्रीपरिषद की विधानमण्डल के प्रति जिम्मेदार बना दिया गया। यह एक अविश्वास प्रस्ताव प्राप्त करके उसे पदच्युत कर सकता था। विधानमण्डल प्रश्नों तथा अनुपूरक प्रश्नों के माध्यम से प्रशासन पर कुछ नियन्त्रण रख सकता था। किन्तु विधानमण्डल लगभग 80 प्रतिशत अनुदान भागो को स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकता था। विधायी रूप में विधान मण्डल समवर्ती सूची में सम्मिलित विषयों पर भी कानून पास कर सकता था, किन्तु टकराव होने की स्थिति में संघीय कानून भी प्रभावी रहेगा।

भारत शासन एक्ट 1935 के अधीन संवैधानिक योजना का संघीय भाग अत्यधिक अव्यवहारिक था। प्रान्तों में फेडरेशन की योजना को स्वीकार नहीं किया और क्योंकि आधी रियासतों के फेडरेशन में सम्मिलित होने की शर्त को पूरा नहीं किया जा सका। इसलिए 1935 के एक्ट में परिकल्पित भारत संघ (फेडरेशन ऑफ इण्डिया) अस्तित्व में नहीं आ पाया। और एक्ट के संघीय भाग को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता ।

1935 के अधिनियम द्वारा जिस शासन प्रणाली की व्यवस्था की गयी थी इसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित थे।

(क) परिसंघ और प्रान्तीय स्वायत्तता।

(ख) केन्द्र में द्वैधशासन।

(ग) विधानमण्डल (विधानसभा और विधानपरिषद)

(घ) केन्द्र और प्रान्तों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण।

1935 के भारतीय शासन अधिनियम में विधायी शक्तियों को केन्द्र और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विभाजित किया गया और नीचे उल्लिखित उपबंधो के अधीन रहते हुए किसी भी विधान मण्डल को दूसरे की शक्तियों का अतिक्रमण करने का अधिकार नहीं थां

इस अधिनियम में तीन प्रकार का विभाजन किया गया।

1.एक परिषद सूची थी जिस पर परिसंघ विधानमण्डल को विधान बनाने के अनन्य शक्ति थी इस सूची में विदेश कार्य करेगी और मुद्रा, नौसेना, सेना और वायुसेना, जनगणना जैसे विषय थे।

2.विषयों की एक प्रांतीय सूची थी जिस पर प्रान्तीय विधानमण्डलों की अनन्य अधिकारित थी। उदाहरण के लिये पुलिस, प्रान्तीय लोकसेवा और शिक्षा।

3.विषयों की एक समवर्ती सूची थी जिस पर परिसंघ और प्रान्तीय विधानमण्डल दोनों विधान बनाने के लिए सक्षम थे। उदाहरणार्थ दण्ड विधि और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह और विवाह विच्छेद, माध्यस्थम।

(क) ब्रिटिश पार्लियामेंट की प्रभुता और उत्तरदायित्व का उत्सादनः- जैसा पहले बताया गया है भारत शासन अधिनियम, 1958 द्वारा भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से सम्राट को अन्तरित कर दिया गया था। इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश पार्लमेंट भारत की प्रत्यक्ष संरक्षक बन गई और भारत के प्रशासन के लिए भारत के लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पद का सृजन किया गया। भारत के मामलों के लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट संसद के प्रति उत्तरदायी था। यह नियन्त्रण धीरे-धीरे शिथिल होता गया फिर भी भारत का गवर्नर-जनरल और प्रान्तों के गवर्नर भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 तक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के सीधे नियन्त्रण के अधीन बने रहे जिससे किः-

’’संविधान के सिद्धान्त रूप में भारत की सरकार हिज मैजेस्टी भी सरकार के अधीनस्थ सरकार थी।’’

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ने इस संविधानिक स्थिति में आमूल परिवर्तन कर दिया। उसने यह घोषित किया कि 15 अगस्त 1947 से (जिसे "नियत दिन" कहा गया) भारत अधीनस्थ राज्य नहीं रहा और देशी रियासतों पर ब्रिटिश सम्राट की प्रभुत्ता तथा जनजाति क्षेत्रों से उनके सन्धि सम्बन्ध उसी दिन से समाप्त हो गए।

ब्रिटिश सरकार और पार्लमेंट का भारत के प्रशासन के लिए उत्तर दायित्व समाप्त हो जाने के कारण भारत के लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का पद भी समाप्त कर दिया गया।

(ख) सम्राट प्राधिकार का स्रोत नहीं रहा

जब तक भारत ब्रिटिश सम्राट का अधीनस्थ राज्य था। तब तक भारत का शासन हिज मैजेस्टी के नाम से चलाया जाता था। 1935 के अधिनियम के अधीन परिसंघ स्कीम बनने के कारण सम्राट को और भी प्रमुखता मिली। परिसंघ की सभी इकाइया, प्रान्त और केन्द्र, और प्राधिकार सीधे सम्राट से प्राप्त करते थे। किन्तु स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 के अधीन भारत और पाकिस्तान की डोमिनियमों में से कोई भी ब्रिटिश द्वीप समूह से प्राधिकार नहीं लेती थी।

(ग) गवर्नर जनरल और प्रान्तीय गवर्नरो का संविधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करना -

दोनों डोमिनियमों के गवर्नर-जनरल दोनों नई डोमिनियमों के संविधानिक अध्यक्ष हो गए। यह ’’डोमिनियम प्रास्थिति’’ की अवश्यभावी परिणति थी। यह प्रास्थिति भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा नहीं दी गई थी किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 द्वारा प्रदान की गई।

स्वतन्त्रता अधिनियम के अधीन किए गए अनुकूलनो के अनुसार 1919 के अधिनियम के अधीन बनाई गई कार्यकारी परिषद मंत्रिपरिषद या 1935 के अधिनियम में उपबन्धित परामर्शदाता समाप्त हो गए।

गवर्नर-जनरल और प्रान्तीय गवर्नर मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने लगें। मंत्रिपरिषद को डोमिनियन विधानमण्डल या प्रान्तीय विधानमण्डल का विश्वास होना आवश्यक था। भारत शासन अधिनियम, 1935 से स्वविवेकानुसार ’’अपने विवेकानुसार कार्य करते हुए’’ और ’’अपने स्वंय के विवके से’’ शब्द जहॉ -जहॉ आते थे वहॉ से निकाल दिए गए। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा था जिसमें संविधानिक अध्यक्ष मंत्रियों की सलाह के बिना या उनकी इच्छा के विरूद्ध कार्य कर सकें। इसी प्रकार गवर्नर-जनरल की उस शक्ति का

भी विलोप कर दिया गया। जिसके अनुसार वह गवर्नरो से यह अपेक्षा कर सकता था कि वे उसके अभिकर्ता के रूप में कार्य करें।

गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के विधान बनाने की साधारण शक्तिया भी नष्ट हो गयी। वे अब विधान मण्डल के प्रतियोगिता में अधिनियम नहीं पारित कर सकते थे। और न ही सामान्य विधायी परियोजनों के लिए उद्घोषणाएँ और अध्यादेश निकाल सकते थे। उनकी प्रमाणित करने की शक्ति भी समाप्त कर दी गयी। प्रान्तीय संविधान को निलंबित करने की गवर्नर की शक्ति भी ले ली गयी। सम्राट का वीतोफा अधिकार चला गया और गवर्नर जनरल अब किसी विधेयक को सम्राट की अनुमति के लिए आरक्षित नहीं कर सकता था।

(घ) डोमिनियम विधानमण्डल की प्रभुता 14.08.1947 को भारत का केन्द्रीय विधानमण्डल जो विधानसभा और राज्य परिषद से मिलकर बना था विघटित हो गया। ''नियत दिन'' से और जब तक दोनों की डोमिनियमों की संविधान सभाए नए संविधानों की रचना न कर लें और उनके अधीन नए विधानमण्डल गठित न हो जाए तब तक संविधान सभा को ही अपने डोमिनियम के केन्द्रीय विधानमण्डल के रूप् में कार्य करना था। दोनों शब्दों में, दोनों डोमिनियमों की संविधानसभाओं को (जब तक कि वह स्वंय अन्यथा इच्छा प्रकट न करें) दोहरा काम करना था। संविधानिक और विधायी।

डोमिनियम विधानमण्डल की प्रभुता संपूर्ण थी और किसी भी मामले में विधान बनाने के लिए अब गवर्नर-जनरल की मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी। तथा ब्रिटिश सम्राज्य की किसी विधि के उल्लंघन के कारण कोई विरोध भी नहीं हो सकता था।

अभ्यास प्रश्नः-

1.भारतीय परिषद अधिनियम 1861 ई0 के बारे में बताइये।

2.माण्टेग्यू की घोषणा क्या है?

3.दोहरा शासन पर संक्षिप्त लेख लिखिए?

4.भारत शासन अधिनियम 1935 की विशेषताए बताइये?

5.भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के बारे में बताइए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः-

1. सन 1909 के अधिनियम को दूसरे कौन से नाम से जाना जाता है?

(अ) मोरले-मिंटो सुधार (ब) राज्य सभा सुधार बिल

(स) होमरूल बिल (द) माण्टेग्यू बिल

2. माण्टेंग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार निम्न में से कब प्रकाशित किए गये?

(अ) 08 जुलाई 1918 (ब) 08 जुलाई 1919

(स) 08 जुलाई 1920 (द) 08 जुलाई 1921

3. किस अधिनियम में साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की व्यवस्था की गई ?

(अ) 1861 का अधिनियम (ब) 1909 का अधिनियम

(स) 1919 का अधिनियम (द) 1935 का अधिनियम

3. द्वैध शासन की व्यवस्था किस अधिनियम में की गयी?

(अ) 1909 का अधिनियम (ब) 1935 का अधिनियम

(स) 1919 का अधिनियम (द) 1947 का अधिनियम

1.5 सारांशः-

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस इकाई को पढ़ने के बाद संविधान क्या है? इसका अर्थ समझने में सहायता मिली है, साथ ही संवैधानिक विधि के विविध पक्षों को भी जाने का अवसर प्राप्त हुआ है । संविधानवाद का तात्पर्य जान चुके होंगे। भारतीय संविधान की एक रूपरेखा समझ चुके होंगे। प्राचीन भारत में संवैधानिक शासन प्रणाली से अवगत हो चुके होंगे।अंग्रेजी शासन काल (औपनिवेशिक काल में) में विभिन्न अधिनियमों द्वारा संवैधानिक विकास के बारे में जान चुके होंगे। भारत शासन अधिनियम 1935 की विशेषताओं को समझ चुके होंगे। इसके साथ ही संविधान के अपने मूल स्वरूप में पहुचने की प्रक्रिया में विभिन्न अधिनियमों के बारे में भी विस्तार से जानने को मिला ,जिसमें हमने पाया कि एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम है हमारा संविधान।

1.6 शब्दावली

विनियमन - निर्धारण करता है।
परिसंघीय - संघ/केन्द्र
निरूपण - प्रदर्शित करना
परिसीमन - सीमित करना/नियंत्रित करना
स्वेच्छाधारी - तानाशाह
अंगीकार - अपनाया गया
विनियमों - नियम/कानून
साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व - धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व
द्वैधशासन - दोहरा शासन (संघ तथा राज्यो में अलग-अलग शासन)
डोमिनियन - राज्य

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3.3. प्रश्न संख्या 01 (ब)

प्रश्न संख्या 02 (द) प्रश्न संख्या 03 (ब)

1.4.2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न संख्या 01 (अ) 02 (ब) 03 (ब) 04 (स)

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट,

2.बसु, डी0डी0, भारत का संविधान-एक परिचय, नागपुर, वाधवा

3. Kagzi, M.C. Jain- ***The Constitutional of India Vol I &2*** New Delhi, India Law House, 2001.

4. Keith, Arthur Berriedale- ***A Constitutional History of India 1600-1935,*** London, Methuan & Co.Ltd, 1937

5. Austin, Granville – ***Working a Democratic Constitution: The Indian Experience,*** Delhi Oxford University Press 1999.

6. Sharma, Brij Kishore – ***Introduction to the Constitution of India*** New Delhi, Prentice – Hall of India, 2005.

7. Pandey J.N. – ***Constitutional Law of India,*** Allahabad, Central Law Agency, 2003.

8. Pylee, M.V. ***Constitutional Amendments in India,*** Delhi, Universal Law, 2003.

9. Jois, Justice M.Rama – ***Legal and Constitutional History of India,*** Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.

10. Kautilya – ***The Constitutional History of India 2002,*** Bombay: C Jammadas & Co. Educational and Law Publishers.

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

1.काश्यप, सुभाष, हमारी संसद, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011

2.भारत 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,

3.राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार।

4.चन्द्र बिपिन - भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. Agrawal, R.N. ***National Movement and Constitutional Development of India*** – Nineth

(Revised) Edn. New Delhi Metropolitan book Co. (Pvt) Ltd. 1976

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.''सन 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधार अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल सिद्ध हुए।'' इस कथन की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

2.दोहरे शासन से आप क्या समझते है? सन 1919 के एक्ट के अनुसार यह क्यों जारी किया गया? इसकी क्या विशेषता थी?

3.भारत शासन अधिनियम, 1935 का भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के निर्माण में कितना योगदान है?

4.ब्रिटिश काल में भारत के संवैधानिक विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

इकाई 2: संविधान निर्माण, संविधान के स्रोत

इकाई की संरचना

2.1. प्रस्तावना
2.2. उद्देश्य
2.3. संविधान सभा की मांग
2.3.1 संविधान सभा का निर्माण
2.3.2 संविधान निर्माण की प्रक्रिया
2.4 संविधान के स्रोत
2.4.1 संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोत
2.4.2 संविधान के विदेशी स्रोत
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत जैसे विशाल और विविधता भरे देश के लिए संविधान बनाना आसान नहीं था। भारत के लोग तब गुलाम की हैसियत से निकल कर नागरिक की हैसियत पाने जा रहे थे। देश ने धर्म के आधार पर हुए बटवारे की विभीषिका झेली थी। विभाजन से जुडी हिंसा में सीमा के दोनों तरफ कम से कम दस लाख लोग मारे जा चुके थे। एक बड़ी समस्या और भी थी। अंग्रेजो ने देशी रियासतों के शासकों को यह आजादी दे दी थी कि वे भारत या पाकिस्तान जिसमें इच्छा हो अपनी रियासतों का विलय कर दे या स्वतंत्र रहें। इन रियासतों का विलय मुश्किल और अनिश्चय भरा काम था। जब संविधान लिखा जा रहा था तब देश का भविष्य उतना सुरक्षित और चैन भरा नहीं लगता था, जितना आज है। संविधान निर्माताओं को देश के वर्तमान और भविष्य की चिंता थी।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1) संविधान सभा के बारे में समझ सकेंगे।
2) भारतीयों द्वारा स्वयं अपना संविधान निर्माण की विभिन्न मांगो और प्रयासों को जान गये होंगे।
3) संविधान निर्माण की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
4) संविधान में भारतीय और विदेशी स्रोत स्रोत के बारे में समझ सकेंगे।

2.3 संविधान सभा की मांग

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद भारतीयों में राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई और धीरे-धीरे भारतीयों की यह धारणा बनने लगी कि भारत के लोग स्वयं अपने राजनीतिक भविष्य का निर्णय करें। इसकी

अभिव्यक्ति बालगंगाधर तिलक की उस नारे से होती है कि ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे।'' इसकेपश्चातमहात्मा गाँधी ने 1922 में यह मांग की थी कि भारत का राजनैतिक भाग्य भारतीय स्वयं बनायेंगे। 1924 में मोतीलाल नेहरू द्वारा ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गयी कि भारतीय संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया जाय। कानूनी आयोग और राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस की असफलता के कारण भारतवासियों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत शासन अधिनियम, 1935 अधिनियम किया गया। इससे भारत के लोगो की इस मांग ने जोर पकडा़ कि वे बाहरी हस्तक्षेप के बिना संविधान बनाना चाहते है, इस मांग को कांग्रेस ने 1935 में प्रस्तुत किया। 1938 में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा की मांग को स्पष्ट रखते हुए यह कहा -

''कांग्रेस स्वतंत्र और लोकतंत्रात्मक राज्य का समर्थन करती है। उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान बिना बाहरी हस्तक्षेप के ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए, जो वयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित हो।''

1939 में विश्व युद्ध छिड़ने के बाद, संविधान सभा की मांग को 14 सितंबर, 1939 को कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा जारी किए गये एक लंबे वक्तव्य में दोहराया गया। गॉधी जी ने 19 नवम्बर, 1939 को 'हरिजन' में 'द ओनली वे' शीर्षक के अन्तर्गत एक लेख लिखा, जिसमें उन्होनें अपने विचार व्यक्त किया कि ''संविधान सभा ही देश की देशज प्रकृति का और लोकेच्छा का सही अर्थो में तथा पूरी तरह से निरूपण करने वाला संविधान बना सकती है'' उन्होंने घोषणा की कि साम्प्रदायिकता तथा अन्य समस्याओं के न्यायसंगत हल का एकमात्र तरीका भी संविधान सभा ही है।

1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की मांग को पहली बार आधिकारिक रूप से स्वीकार किया भले ही स्वीकृति अप्रत्यक्ष शर्तो के साथ थी।

2.3.1 संविधान सभा का निर्माण

ब्रिटिश सरकार ने द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक संविधान सभा की मांग का विरोध किया, विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर बाहरी परिस्थितियों के कारण उन्हें यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा कि भारतीय संवैधानिक समस्या का हल निकालना अति आवश्यक है। 1940 में इंग्लैण्ड में बहुदलीय सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि भारत के लिए नया संविधान भारत के लोग ही बनाऐंगे। मार्च, 1942 में जब जापान भारत के द्वार पर आ गया। तब उन्होंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को जो मंत्रिमण्डल के एक सदस्य थे। ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की घोषणा के प्रारूप के साथ भेजा। ये प्रस्ताव युद्ध की समाप्ति पर अंगीकार किये जाने वाले थे यदि (कांग्रेस और मुस्लिम लीग) दो प्रमुख राजनीतिक दल उन्हें स्वीकार करने के लिए सहमत हो जायें।

मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे

1. भारत के संविधान की रचना भारत के लोगो द्वारा निर्वाचित संविधान सभा करेगी।

2. संविधान भारत को डोमिनियन प्रास्थिति और ब्रिटिश राष्ट्रकुल में बराबर की भागीदारी देगा।

3. सभी प्रान्तो और देशी रियासतों से मिलकर एक संघ बनेगा, किन्तु

4. कोई प्रान्त या (देशी रियासत) जो संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो तत्समय विद्यमान अपनी संविधानिक स्थिति बनाए रखने के लिए स्वतंत्र होगा और इस प्रकार सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों से ब्रिटिश सरकार पृथक संवैधानिक व्यवस्था कर सकेगी।

किन्तु दोनों राजनीतिक दल इन प्रस्तावो को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं हो सके।

क्रिप्स के प्रस्तावों के अस्वीकार हो जाने के पश्चात (और क्रांग्रेस द्वारा ''भारत छोडो'' आन्दोलन प्रारम्भ करने के बाद) दोनों दलों को एकमत करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए, जिनमे गवर्नर-जनरल, लार्ड वावेल की प्रेरणा से किया गया शिमला सम्मेलन भी है। इन सब के असफल हो जाने पर ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने अपने तीन सदस्यों को एक और गंभीर प्रयत्न करने के लिए भेजे। उनमें क्रिप्स भी था, किन्तु यह प्रतिनिधि मण्डल भी दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच सहमति लाने में असफल रहा। परिणामस्वरूप उसे अपने ही प्रस्ताव रखने पड़े। जिनकी भारत और इंग्लैण्ड में 16 मई, 1946 को एक साथ घोषणा की गई।

मंत्रिमण्डलीय प्रतिनिधि मण्डल के प्रस्ताव में भारत का संघ बनाने और उसका विभाजन करने के बीच समझौता लाने का प्रयत्न किया गया। मंत्रिमण्डलीय प्रतिनिधिमण्डल ने पृथक संविधान सभा और मुसलमानों के लिए पृथक राज्य के दावे को स्पष्टतः नामंजूर कर दिया। जिस स्कीम की सिफारिश उन्होंने की उसमें मुस्लिम लीग के दावे के पीछे जो सिद्धान्त था उसको लगभग स्वीकार कर लिया गया।

उस स्कीम के मुख्य लक्ष्य ये थे-

1. एक भारत संघ होगा, जो ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से मिलकर बनेगा, जिसकी विदेश कार्य, प्रतिरक्षा और संचार के विषयों पर अधिकारिता होगी। शेष सभी शक्तियॉ प्रान्तो और राज्यों में निहित होंगी।

2. संघ की एक कार्यपालिका और एक विधानमण्डल होगा जो प्रान्तों और राज्यों के प्रतिनिधियों से गठित होगा, किन्तु जब विधान मण्डल में कोई प्रमुख साम्प्रदायिक प्रश्न उठेगा तो उसका विनिश्चय दोनां प्रमुख समुदायों के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा।

प्रान्त उस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे कार्यपालिका और विधानमण्डलों के गुट बना लें और प्रत्येक गुट उन प्रान्तीय विषयों को अवधारित करने के लिए सक्षम होगा जिन पर गुट संगठन की अधिकारिता होगी।

जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड में नई लेबर सरकार सत्ता में आयी। तब 19 सितम्बर, 1945 को वायसराय लार्ड वेवल ने भारत के संबन्ध में सरकार की नीति की घोषणा की तथा 'यथाशीघ्र' संविधान-निर्माण निकाय का गठन करने के लिए महामहिम की सरकार के इरादे की पुष्टि की।

कैबिनेट मिशन ने अनुभव किया कि संविधान-निर्माण निकाय का गठन करने की सर्वाधिक संतोषजनक विधि यह होती कि उसका गठन वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा किया जाता, किन्तु ऐसा करने पर नए संविधान के निर्माण में 'अवांछनीय विलम्ब' हो जाता। इसलिए उनके अनुसार एकमात्र व्यवहार्य तरीका यही था कि हाल में निर्वाचित प्रान्तीय सभाओं का उपयोग निर्वाचन निकायों के रूप में किया जाए। तत्कालीन परिस्थितियों में मिशन ने इसे ''सर्वाधिक न्यायोचित तथा व्यवहार्य योजना'' बताया और सिफारिश की कि संविधान-निर्माण-निकाय में प्रान्तों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर हो। मोटे तौर पर दस लाख लोगों के पीछे एक सदस्य चुना जाए और विभिन्न प्रान्तों को आवंटित स्थान इस प्रयोजन के लिए वर्गीकृत मुख्य समुदायों

यथा सिक्खों, मुसलमानों और सामान्य लोगों में (सिक्खों तथा मुसलमानों का छोड़कर) उनकी जनसंख्या के आधार पर विभाजित कर दिए जाए। प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभा में उस समुदाय के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। और मतदान एकल संक्रमणीय मत सहित अनुपाती प्रतिनिधित्व की विधि द्वारा कराया जाना था। भारतीय रियासतों के लिए आवंटित सदस्यों की संख्या भी जनसंख्या के उसी आधार पर निर्धारित की जानी थी, जो ब्रिटिश भारत के लिए अपनाया गया था, किन्तु उनके चयन की विधि बाद में परामर्श द्वारा तय की जानी थी। संविधान निर्माण-निकाय की सदस्य संख्या 389 निर्धारित की गई। जिनमें से 292 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के गवर्नरों के अधीन ग्यारह प्रान्तों से, 4 चीफ कमिश्नरों के चार प्रान्तों अर्थात दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान से एक-एक तथा 93 प्रतिनिधि भारतीय रियासतों से लिये जाने थे।

कैबिनेट मिशन ने संविधान के लिए बुनियादी ढाँचे का प्रारूप पेश किया तथा संविधान -निर्माण-निकाय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का कुछ विस्तार के साथ निर्धारण किया।

ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को आवंटित 296 स्थानों के लिए चुनाव जुलाई-अगस्त, 1946 तक पूरे कर लिए गये थे। कांग्रेस को 208 स्थानों पर जिनमें नौ को छोड़कर शेष 73 स्थानों पर विजय प्राप्त हुय

ब्रिटिश भारत की विधानसभाओं से चुने गये सदस्यों का पार्टीवार ब्यौरा इस प्रकार थाः-

कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
युनियनिस्ट	1
युनियनिस्ट मुस्लिम	1
युनियनिस्ट अनुसूचित जातियां	1
कृषक प्रजा	1
अनुसूचित जाति परिसंघ	1
सिक्ख (गैस कांग्रेसी)	1
कम्युनिस्ट	1
स्वतन्त्र	1
	8
	296

कहा जा सकता है कि 14-15 अगस्त, 1947 को देश के विभाजन तथा उसकी स्वतन्त्रा के साथ ही, भारत की संविधान सभा कैबिनेट मिशन योजना के बंधनो से मुक्त हो गई। और एक पूर्णतया प्रभुत्तासम्पन्न निकाय तथा देश में ब्रिटिश संसद के पूर्ण अधिकार तथा उसकी सत्ता की पूर्ण उत्तराधिकारी बन गई। इसके अलावा, 3 जून की योजना की स्वीकृति के बाद, भारतीय डोमिनियन के मुस्लिम लीग पार्टी के सदस्यों ने भी विधानसभा में अपने

स्थान ग्रहण कर लिये। कुछ भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि पहले ही 28 अप्रैल, 1947 को विधान सभा में आ गए और शेष रियासतों ने भी यथासमय अपने प्रतिनिधि भेज दिए।

इस प्रकार संविधान सभा भारत में सभी रियासतों तथा प्रान्तों की प्रतिनिधि तथा किसी भी बाहरी शक्ति के आधिपत्य से पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न निकाय बन गयी। संविधान सभा भारत में लागू ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को, यहाँ तक कि भारतीय स्वतंत्रता एक्ट को भी रद्द अथवा परिवर्तित कर सकती थी।

2.3.2 संविधान निर्माण की प्रक्रिया

संविधान सभा का उद्घाटन नियत दिन सोमवार, 09 दिसम्बर, 1946 को प्रातः ग्यारह बजे हुआ। संविधान सभा का सत्र कुछ दिन चलने के बाद नेहरू जी ने 13 दिसम्बर, 1946 ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया। सुन्दर शब्दों में तैयार किये गये उद्देश्य प्रस्ताव के प्रारूप में भारत के भावी प्रभुत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की रूपरेखा दी गई थी। इस प्रस्ताव में एक संघीय राज्य व्यवस्था की परिकल्पना की गई थी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां स्वायत्त इकाइयों के पास होती तथा प्रभुत्ता जनता के हाथों में। सभी नागरिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, परिस्थिति की, अवसर भी और कानून के समक्ष समानता, विचारधारा, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगत और कार्य की स्वतन्त्रता, की गारंटी दी गई और इसके साथ ही अल्पसंख्यकों, पिछड़े तथा जनजातीय क्षेत्रों तथा दलितों और अन्य पिछड़े वर्गो के लिए पर्याप्त 'रक्षा उपाय' रखे गये। इस प्रकार, इस प्रस्ताव ने संविधान सभा को इसके मार्गदर्शी सिद्धान्त तथा दर्शन दिए, जिनके आधार पर इसे संविधान निर्माण का कार्य करना था। अन्ततः 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

संविधान सभा ने संविधान रचना की समस्या के विभिन्न पहलुओं से निपटने के लिए अनेक समितिया नियुक्त की। इनमें संघीय संविधान समितिया शामिल थी। इनमें से कुछ समितियों के अध्यक्ष नेहरू या पटेल थे, जिन्हें संविधान सभा के अध्यक्ष ने संविधान का मूल आधार तैयार करने का श्रेय दिया था। इन समितियों ने बडे परिश्रम के साथ तथा सुनियोजित ढंग से कार्य किया और अनमोल रिपोर्ट पेश की। संविधान सभा ने तीसरे तथा छठें सत्रों के बीच, मूल अधिकारों, संघीय संविधान, संघीय शक्तियों, प्रान्तीय संविधान अल्पसंख्यको तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियो से सम्बन्धित समितियों की रिपोर्टो पर विचार किया।

भारत के संविधान का पहला प्रारूप संविधान सभा कार्यालय की मंत्रणा शाखा ने अक्टूबर, 1947 को तैयार किया। इस प्रारूप की तैयारी से पहले, बहुत सारी आधार सामग्री एकत्र की गई तथा संविधान सभा के सदस्यों को 'संवैधानिक पूर्वदृष्टांत' के नाम से तीन संकलनों के रूप में उपलब्ध की गई। इस संकलनों में लगभग 60 देशों के संविधानों से मुख्य अंश उद्धृत किए गये थे। संविधान सभा ने संविधान सभा में किए गये निर्णयों पर अमल करते हुए संवैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार किए गये भारत के संविधान के मूल पाठ के प्रारूप की छानबीन करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को डा0 भीमराव अंबेडकर के सभापतित्व में प्रारूप समिति नियुक्त की।

प्रारूपण समिति द्वारा तैयार किया गया भारत के संविधान का प्रारूप 21 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया। संविधान के प्रारूप में संशोधन के लिए बहुत बड़ी संख्या में टिप्पणियां, आलोचनाएं, और सुझाव प्राप्त हुए। प्रारूपण समिति ने इन सभी पर विचार किया। इन सभी पर प्रारूपण समिति की सिफारिशों के साथ विचार करने के लिए एक विशेष समिति का गठन किया। विशेष समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर प्रारूपण समिति ने एक बार फिर विचार किया और कतिपय संशोधन समावेश के लिए छांट लिए गये। इस प्रकार के

संशोधनों के निरीक्षण की सुविधा के लिए प्रारूप समिति ने संविधान के प्रारूप को दोबारा छपवाकर जारी करने का निर्णय किया। यह 26 अक्टूबर, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया।

संविधान के प्रारूप पर खंडवार विचार 15 नवम्बर, 1948 से 17 अक्टूबर 1949 के दौरान पूरा किया गया। प्रस्तावना सबसे बाद में स्वीकार की गई। तत्पश्चात्, प्रारूपण समिति ने परिणामी या आवश्यक संशोधन किए, अंतिम प्रारूप तैयार किया और उसे संविधान सभा के सामने पेश किया।

संविधान का दूसरा वाचन 16 नवम्बर, 1949 को पूरा हुआ तथा उससे अगले दिन संविधान सभा ने डॉ0 अम्बेडकर के इस प्रस्ताव के साथ कि विधानसभा द्वारा यथानिर्णीत संविधान पारित किया जाए, संविधान का तीसरा वाचन शुरू किया। प्रस्ताव 26 नवम्बर 1949 को स्वीकृत हुआ तथा इस प्रकार, उस दिन संविधान सभा में भारत की जनता ने भारत के प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य का संविधान स्वीकार किया, अधिनियमित किया और अपने आपको अर्पित किया। संविधान सभा ने संविधान बनाने का भारी काम दो वर्ष ,ग्यारह माह, अठारह दिन में पूर्ण किया ।

संविधान पर संविधान सभा के सदस्यों द्वारा 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा के अन्तिम दिन अन्तिम रूप से हस्ताक्षर किए गए।

संविधान निर्माताओं ने पुराने संस्थानों के आधार पर जो पहले से विकसित हो चुके थे और जिनके बारें में उन्हें जानकारी थी, जिनसे वे परिचित हो चुके थे और जिनके लिए उन्होंने सभी प्रकार की परिसीमाओं, बंधनों के बावजूद उद्यम किया था, नए संस्थानों का निर्माण करना पसंद किया। संविधान के द्वारा ब्रिटिश शासन को ठुकरा दिया गया किन्तु उन संस्थानों को नहीं जो ब्रिटिश शासनकाल में विकसित हुए थे। इस प्रकार, संविधान औपनिवेशिक अतीत से पूरी तरह से अलग नहीं हुआ।

संविधान सभा ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए जैसे उसने संविधायी स्वरूप के कतिपय कानून पारित किए, राष्ट्रीय ध्वज को अंगीकार किया, राष्ट्रगान की घोषणा की, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से संबंधित निर्णय की पुष्टि की तथा गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव किया।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संवधान के निर्माण में संविधान सभा के महत्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2. भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

3. संविधान सभा के निर्माण की प्रक्रिया को समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष थेः-

(अ) डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (ब) महात्मा गाँधी

(स) डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद (द) डॉ0 सच्चिदानन्द सिन्हा

2. कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा में सदस्यों की संख्या निर्धारित की गईः-

(अ) 250 (ब) 389 (स) 350 (द) 420

3. भारत का संविधान बनाने में समय लगाः-

(अ) 4 वर्ष 3 माह 15 दिन (ब) 02 वर्ष 11 माह 18 दिन (स) 3 वर्ष 9 माह 10 दिन (द) 1 वर्ष 11 माह 18 दिन

4. भारत के संविधान को किस तिथि को स्वीकार किया गयाः-

(अ) 26 नवम्बर 1950 (ब) 26 जनवरी 1949 (स) 26 नवम्बर 1949 (द) 26 जनवरी 1950

5. भारत में सर्वोच्च माना गया हैः-

(अ) राष्ट्रपति को (ब) न्यायपालिका को (स) संविधान को (द) संसद को

2.4. संविधान के स्रोतः

भारत के संविधान सभा ने जिस संविधान का निर्माण किया वह मौलिक न होकर व्यवहारिक है। अर्थात; भारतीय संविधान निर्माताओं ने मौलिक संविधान की रचना न करके संसार के विभिन्न संविधानों के अच्छे गुणों को ग्रहण करके एक व्यवहारिक संविधान की रचना की है। इसके कुछ आलोचकों ने भारतीय संविधान को 'उधार का थैला', भानुमति के कुनबे की तरह गड़बड, ''कैंची और गोंद की खिलवाड़'' आदि अनेक नामों की संज्ञा दी है।

संविधान निर्माताओं ने इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि वे नितान्त स्वतन्त्र रूप से या एकदम नए सिरे से संविधान लेखन नहीं कर रहे। उन्होंने जान-बूझकर यह निर्णय लिया था अतीत की उपेक्षा न करके पहले से स्थापित ढाँचे तथा अनुभव के आधार पर ही संविधान को खड़ा किया जाय। भारत के संविधान का एक समन्वित विकास हुआ। यह विकास कतिपय प्रयासों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम था। स्वाधीनता के लिए छेड़े गये राष्ट्रवादी संघर्ष के दौरान प्रतिनिधिक एवं उत्तरदायी शासन संस्थाओं के लिए विभिन्न मांगे उठाई गयी। और अंग्रेज शासकों ने बडी़ कंजूसी से समय-समय पर थोड़े-थोडे संवैधानिक सुधार किए। प्रारम्भिक अवस्था में यह प्रक्रिया अति अविकसित रूप में थी, किन्तु राजनीतिक संस्थान-निर्माण, विशेष रूप से आधुनिक विधानमण्डलो का सूत्रपात 1920 के दशक के अंतिम वर्षो में हो गया था। वास्तव में, संविधान के कुछ उपबन्धों के स्रोत तो भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा अंग्रेजी राज के शैशवकाल में ही खोजे जा सकते है।

2.4.1 भारतीय संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोतः

भारतीय संविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्वो के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों के संगठन का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थानों से प्रेरित होकर किया गया था। 73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन अधिनियमों

ने उन्हें अब और अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण बना दिया है। मूल अधिकारो की मांग सबसे पहले 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मुंबई अधिवेशन में की गयी थी।

भारत के राज्य-संघ विधेयक में, जिसे राष्ट्रीय सम्मेलन ने 1925 में अंतिम रूप दिया था, विधि के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति, सभा करने और धर्म पालन की स्वतन्त्रता जैसे अधिकारों की एक विशिष्ट घोषणा सम्मिलित थी। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें मूल अधिकारों की मांग को दोहराया गया था। सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा 1928 में नियुक्त मोतीलाल नेहरू कमेटी ने घोषणा की थी कि भारत की जनता का सर्वोपरि लक्ष्य न्याय सीमा के अधीन मूल मानव अधिकार प्राप्त करना है। उस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत का भावी संविधान अपने स्वरूप में संघीय होगा। उसमें देशी रियासतों अथवा भारतीय राज्यों को अलग से अस्तित्व नहीं मिलेगा तथा उन्हें संघ में शामिल होना होगा। नेहरू रिपोर्ट में संसदात्मक शासनप्रणाली अपनाये जाने का प्रावधान था। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में जो उन्नीस मूल अधिकार शामिल किए गये थे, उनमें से दस को भारत के संविधान में बिना किसी खास परिवर्तन के शामिल कर लिया गया। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में पारित किए गये प्रस्ताव में न केवल मूल अधिकारों का बल्कि मूल कर्तव्यों का भी विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। इसमें वर्णित अनेक सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों को संविधान के नीतिनिर्देशक तत्वों में समाविष्ट कर लिया गया था। मूल संविधान में मूल कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था किन्तु बाद में 1976 में संविधान (42 वां) संशोधन अधिनियम द्वारा इस विषय पर एक नया अध्याय संविधान में जोड़ दिया गया था।

भारतीय संविधान पर 1935 के भारत के शासन अधिनियम का प्रभाव सर्वाधिक परिलक्षित होता है। राबर्ट एल. हार्डग्रेव के अनुसार भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में से लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे है जो 1935 के अधिनियम से या तो अच्छरशः ले लिए गये है या फिर उसको थोड़ा-बहुत संशोधन करके परिवर्तन कर दिया गया है। डॉ0 पंजाबी राव देशमुख ने तो यहॉ तक कह दिया है कि नवीन संविधान 1935 का भारत शासन अधिनियम ही है। इसमे केवल वयस्क मताधिकार को जोड़ दिया गया है। वर्तमान संविधान के कुछ मुख्य उपबन्ध थे जो 1935 के अधिनियम के मुख्य सिद्धान्तों से समानता रखते है, जैसे संविधान में सूचियों के आधार पर शक्ति विभाजन, द्विसदनात्मक विधानमण्डल की व्यवस्था, राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की व्यवस्था, राज्यपाल पद की व्यवस्था आदि।

अनुच्छेद 251, 256, 352, 356 इत्यादि 1935 के भारत शासन अधिनियम के ही समान है।

2.4.2 भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत

देशी स्रोतों के अलावा संविधान सभा के सामने विदेशी संविधानों के अनेक नमूने थे जिनसे अच्छी बातों को अपनाया गया जैसे-

1.ब्रिटेन के संविधान से संसदीय प्रणाली, विधि-निर्माण प्रक्रिया तथा एकल नागरिकता को ग्रहण किया गया। न्यायिक आदेशो तथा संसदीय विशेषाधिकारों के विवाद से सम्बन्धित उपबन्धों के परिधि तथा उनके विस्तार को समझने के लिए अभी भी ब्रिटिश संविधान का सहारा लेना पडता है।

2.आयरलैण्ड के संविधान से राज्य के नीतिनिर्देशक तत्व राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल तथा राज्यसभा एवं विधान परिषद में साहित्यकला, विज्ञान तथा समाजसेवा इत्यादि के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों का मनोनयन करने की परम्परा को ग्रहण किया गया है।

3.अमेरिका के संविधान से मौलिक अधिकार, न्यायिक पुनरावलोकन, संविधान की सर्वोच्चता, स्वतन्त्रता, न्यायपालिका, संघवाद, राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया इत्यादि गुण को ग्रहण किया गया है। राष्ट्रपति में संघ की कार्यपालिका तथा संघ के रक्षा बलो का सर्वोच्च समादेश निहित करना और उपराष्ट्रपति को राज्य सभा का पदेन सभापति बनाने के उपबन्ध अमेरिकी संविधान पर आधारित थे।

4.आस्ट्रेलिया के संविधान से प्रस्तावना की भाषा, समवर्ती सूची का प्रावधान, केन्द्र और राज्य के मध्य सम्बन्ध तथा शक्तियों के विभाजन को ग्रहण किया गया था।

5.कनाडा के संविधान से संघीय शासन व्यवस्था के गुण को ग्रहण किया गया तथा संघ शब्द के स्थान पर यूनियन शब्द का प्रयोग किया गया है।

6.रूसी संविधान से नागरिको के मूल कर्तव्यों को ग्रहण किया है।

7.जर्मनी के संविधान से आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति के मौलिक अधिकार सम्बन्धित शक्तियों को ग्रहण किया गया है।

8.जापान के संविधान से विधि द्वारा राष्ट्रपति क्रियाविधि सिद्धान्तों का प्रावधान जिसके आधार पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय कार्य करता है।

9.दक्षिण अफ्रीका के संविधान से संविधान संशोधन की प्रक्रिया की विधि को ग्रहण किया गया था।

संविधान के अन्य स्रोत के अन्तर्गत संसद द्वारा पारित कानून, राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश, संसद द्वारा निर्मित कुछ प्रमुख कानून, संविधिया जो संविधान के अभिन्न अंग बन गए है इनमें प्रमुख है भारतीय जन प्रतिनिधि अधिनियम 1950 एवं 1951, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1950, भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955-56 तथा जनप्रतिनिधि अधिनियम, 1988 इत्यादि। भारत में कुछ परम्पराए भी संविधान के विकास में संयोगी रही है। जैसे - संविधान के अनुसार कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित है परन्तु परम्परा यह है कि यह मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही कार्य करता है। इस परम्परा को 42 वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा संविधान का अंग बना दिया गया कि राष्ट्रपति को मंत्रीमण्डल की सलाह मानना बाध्यकारी है। दूसरा राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकता है किन्तु ऐसा वह प्रधानमंत्री की सलाह से ही करेगा, तीसरा राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। संविधान लागू होने से अब तक भारत में संविधान में 100 से अधिक संशोधन हो चुके है भारत में संविधान का एक प्रमुख स्रोत वे न्यायिक निर्णय है जो सर्वोच्च न्यायालय में समय-समय पर दिए है। भारतीय संविधान के विभिन्न स्रोत है तथा इसे संसार के अनेक देशों के संविधान से ग्रहण किया गया है लेकिन भारतीय संविधान को पूर्णरूपेण अन्य संविधानों की नकल भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमारा संविधान दूसरे देशों के संविधान का अन्धानुकरण नहीं है किन्तु उनकी अच्छी बातों को ग्रहण करके उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनूकूल ढ़ाला गया है।

अभ्यास प्रश्नः-

1.भारतीय संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोतों के बारें में बताइए?

2.भारतीय संविधान में 1935 के भारत शासन काल अधिनियम का कितना प्रभाव पड़ा। इसकी व्याख्या करें।

3.भारतीय संविधान के विदेशी स्रोतों के बारें में विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः-

1.भारतीय संविधान में संविधान संशोधन की प्रक्रिया किस देश से ली गयी है?

(अ) जापान (ब) जर्मनी (स) ब्रिटेन (द) दक्षिण अफ्रीका

2.संविधान के अनुच्छेद 21 में लिखित कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया किस देश के संवैधानिक प्रावधान के समान है

(अ) अमेरिका (ब) चीन (स) ब्रिटेन (द) जर्मनी

3.भारतीय संविधान का सबसे बड़ा स्रोत माना गया है?

(अ) ब्रिटिश संविधान (ब) अमेरिकी संविधान (स) नेहरू रिर्पोर्ट (द) 1935 का भारत शासन अधिनियम

4.राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया भारतीय संविधान में ग्रहण की गयी है-

(अ) आस्ट्रेलियाई संविधान से (ब) अमेरिकी संविधान से

(स) कनाडा के संविधान से (द) ब्रिटेन के संविधान से

5. भारतीय संविधान में वर्णित मूल कर्तव्यों को किस देश के संविधान से लिया गया है?

(अ) जापान (ब) चीन (स) ऑस्ट्रेलिया (द) रूस

6. भारतीय संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन किस देश के संविधान से लिया गया है?

(अ) ब्रिटेन (ब) कनाड़ा (स) अमेरिका (द) जर्मनी

2.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीय संविधान निर्माण में किस प्रकार को अपनाया गया है । साथ ही हमें यह भी जानने को मिला कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण में किन देशो से भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण पक्षों को अपने संविधान में शामिल किया है ।

2.6 शब्दावली

धारा- किसी दस्तावेज का खास हिस्सा, अनुच्छेद

संविधान- देश का सर्वोच्च कानून

संविधान संशोधन- देश के सर्वोच्च विधायी संस्था द्वारा उस देश के संविधान मे किये जाने वाला बदलाव

संविधान सभा-जन प्रतिनिधियों की वह सभा जो संविधान लिखने का काम करती है।

प्रारूप- किसी कानूनी दस्तावेज का प्रारंभिक रूप

वयस्क मताधिकार- 18 वर्ष के अधिक उम्र के व्यक्ति द्वारा मत के प्रयोग का अधिकार(भारत के सन्दर्भ में)

न्यायिक निर्वचन-न्यायपालिका द्वारा समय-समय पर कानून की व्याख्या

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3.3 प्रश्न संख्या 01 (स), 02 (ब), 03 (ब ,04 (स) ,05 - (स) ,

2.4.2 प्रश्न संख्या 01 (द), 02 (अ), 03 (द), 04 (ब), 05 (द), 06 - (स)

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट,

2.बसु, डी0डी0, भारत का संविधान-एक परिचय, नागपुर, वाधवा

3. Kagzi, M.C. Jain- ***The Constitutional of India Vol I &2*** New Delhi, India Law House, 2001.

4. Keith, Arthur Berriedale- ***A Constitutional History of India 1600-1935,*** London, Methuan & Co.Ltd, 1937

5. Austin, Granville – ***Working a Democratic Constitution: The Indian Experience,*** Delhi Oxford University Press 1999.

6. Sharma, Brij Kishore – ***Introduction to the Constitution of India*** New Delhi, Prentice – Hall of India, 2005.

7. Pandey J.N. – ***Constitutional Law of India,*** Allahabad, Central Law Agency, 2003.

8. Pylee, M.V. ***Constitutional Amendments in India,*** Delhi, Universal Law, 2003.

9. Jois, Justice M.Rama – ***Legal and Constitutional History of India,*** Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.

10. Kautilya – ***The Constitutional History of India 2002,*** Bombay: C Jammadas & Co. Educational and Law Publishers.

2..9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्रीः-

1.काश्यप, सुभाष, हमारी संसद, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011

2.भारत 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,

3.राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार।

4.चन्द्र बिपिन - भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. Agrawal, R.N. ***National Movement and Constitutional Development of India*** – Nineth (Revised) Edn. New Delhi Metropolitan book Co. (Pvt) Ltd. 1976

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान के निर्माण के इतिहास का वर्णन कीजिए?

2.भारतीय संविधान विभिन्न देशों की संवैधानिक प्रक्रियाओं का मिला-जुला स्वरूप है। इसकी व्याख्या कीजिए।

3.भारतीय संविधान के देशी तथा विदेशी स्रोतों का वर्णन कीजिए।

इकाई 3 : संविधान का दर्शन

इकाई की रूपरेखाः-

3.1. प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संविधान का आधार-तत्व
3.3.1 संविधान का उद्देश्य - संकल्प
3.3.2 संविधान की उद्देशिका
3.4 42 वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में हुए संशोधन
3.4.1 प्रस्तावना की संक्षिप्त व्याख्या
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक /उपयोगी पाठ सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रत्येक संविधान एक प्रस्तावना से आरम्भ होता है। इस प्रस्तावना में संविधान के मूल उद्देश्य व लक्ष्य निहित होते है। यह प्रस्तावना संविधान की रचना करने के विचारों और भावनाओं का प्रतिरूप होती है। इसी के अनुसार संविधान का क्रियान्वयन किया जा सकता है। भारतीय संविधान में एक प्रस्तावना है। इसे भारत के जनतन्त्रीय गणतन्त्रात्मक स्वरूप का एक संक्षिप्त घोषणा पत्र भी कहा जा सकता है। किसी संविधान की प्रस्तावना से आशा की जाती है कि जिन मूलभूत मूल्यों तथा दर्शन पर संविधान आधारित हो, तथा जिन लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करने के लिए संविधान निर्माताओं ने राज्य व्यवस्था को निर्देश दिया हो, उनका उसमें समावेश हो। संविधान सभा में भाषण देते हुए पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने कहा कि "प्रस्तावना संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसे संविधान की आत्मा भी कहा जा सकता है। यह संविधान की कुंजी है। यह एक ऐसा मानदण्ड है जिसके आधार पर संविधान का मूल्यांकन किया जा सकता है। मैं अपेक्षा करता हूँ कि भारतीय संविधान के सभी प्रावधानों को प्रस्तावना की कसौटी पर परखा जाए और तब हम यह फैसला करें कि संविधान अच्छा है अथवा नहीं''।

3.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपः-

1) संविधान की प्रस्तावना का आधार-तत्व समझ सकेंगे।
2) संविधान के उद्देश्य-संकल्प को जान सकेंगे।
3) संविधान की उद्देशिका को समझ सकेंगे।
4) प्रस्तावना में वर्णित संप्रभुता, लोकतंत्र, गणराज्यीय स्वरूप को समझ सकेंगे।
5) प्रस्तावना में वर्णित समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, समानता, न्याय तथा समानता को समझ सकेंगे।
6) प्रस्तावना में वर्णित बंधुता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता को जान सकेंगे।
7) संविधान के दर्शन को आप भली-भॉति समझ सकेंगे।

3.3. संविधान का आधार-तत्व

महात्मा गाँधी ने 1931 में अपनी पत्रिका 'यंग इण्डिया' में संविधान से अपनी अपेक्षा के बारें में लिखा था- ''मैं भारत के लिए ऐसा संविधान चाहता हूँ जो उसे गुलामी और अधीनता से मुक्त करें, मैं ऐसे भारत के लिए प्रयास करूंगा जिसे सबसे गरीब व्यक्ति भी अपना माने और उसे लगे कि देश को बनाने में उसकी भी भागीदारी है, ऐसा भारत जिसमें लोगों में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग न रहें, ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय के लोग पूरे मेल-जोल से रहे। ऐसे भारत में छुआछूत या शराब और नशीली चीजों के लिए कोई जगह न हो। औरतों को भी मर्दों जैसें अधिकार हो, मैं इससे कम पर संतुष्ट नहीं होऊंगा।'' 15 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि के समय संविधान सभा में दिये जवाहरलाल नेहरू के प्रसिद्ध भाषण-**''वर्षों पहले हमने अपनी नियति के साथ साक्षात्कार किया था, और अब वक्त आ गया है कि हम अपने वायदों पर अमल करें- पूरी तरह या हर तरह से नहीं तो काफी हद तक। घड़ियॉ जब ठीक मध्य रात्रि का घंटा बजायेगी, जब सारीदुनियाँ सोती होगी, तब भारत नए जीवन की शुरूआत करेगा, आबाद होगा। इतिहास में कभी-कभार ही सही पर एक ऐसा क्षण जरूर आता है, जब हम पुराने को छोड़कर नए में प्रवेश करते है, जब एक युग का अंत होता है और जब लंबे समय से किसी राष्ट्र की दबी हुई आत्मा प्रस्फुटित होती है, आवाज आती है। ऐसे पवित्र क्षण में हम अपने आपको, भारत और उसके लोगों तथा उससे भी अधिक मानवता की सेवा में समर्पित करें, यही हमारे लिए उचित है। आजादी और सत्ता जिम्मेदारियॉ लाती है। भारत के सम्प्रभु लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली इस संप्रभुता सम्पन्न सभा के ऊपर अब जिम्मेदारियॉ है। आजादी के जन्म से पूर्व हमने पूरी प्रसव पीड़ा झेली है और इस क्रम में हुए दुखों से हमारा दिल भारी है। इसमें कुछ दर्द अभी भी बने हुए है। फिर भी, इतिहास अब बीत चुका है और अब भविष्य हमें सुनहरे संकेत दे रहा है।**

यह भविष्य बहुत आराम करने या सुस्ताने का नहीं बल्कि उन वायदों को पूरा करने के लिए निरन्तर प्रयास करने का है जिन्हें हमनें अक्सर किया है और एक शपथ हम आज भी लेंगे। भारत की सेवा करने का अर्थ है, दुःख और परेशानियों में पड़े लाखों-करोड़ो लोगो की सेवा करना। इसका अर्थ है, दरिद्रता का अज्ञान और बीमारियों का, अवसर की असमानता का अंत । हमारे युग के महानतम आदमी की कामना हर ऑख से ऑसू पोछने की है। संभव है यह काम हमारे भर से पूरा न हो पर जब तक लोगों की ऑखों में ऑसू है, कष्ट है तब तक हमारा काम खत्म नहीं होगा।''

भेदभाव और गैर-बराबरी मुक्त भारत का सपना डॉ0 अम्बेडकर के मन में भी था। संविधान सभा में दिये गए अपने अंतिम भाषण में उन्होंने अपनी चिंताओं को बहुत स्पष्ट ढंग से रखा था-'' 26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे है। राजनीति के मामले में हमारे यहॉ समानता होगी पर आर्थिक और सामाजिक जीवन असमानताओं से भरा होगा। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति-एक वोट' और 'हर वोट का समान महत्व' के सिद्धान्त को मानेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम अपने सामाजिक और आर्थिक ढॉचे के कारण ही, 'एक व्यक्ति -एक वोट' के सिद्धान्त को नकारना जारी रखेंगे। हम इस विरोधाभास पूर्ण जीवन को कितने लंबे समय तक जीते रहेंगे? अगर यह नकारना ज्यादा लंबे समय तक चला तो हम अपने राजनैतिक लोकतंत्र को ही संकट में डालेंगे।''

महात्मा गॉधी, जवाहर लाल नेहरू एवं डॉ0 अम्बेडकर का देश के लिए चिंता, आशा एवं सपने ही भारतीय संविधान का आधार-तत्व है।

3.3.1 संविधान का उद्देश्य-संकल्प

हमारे संविधान के पीछे जो दर्शन है उसके लिए हमें पण्डित नेहरू के उस ऐतिहासिक उद्देश्य-संकल्प की ओर देखना होगा जो संविधान सभा ने 22 जनवरी 1947 को अंगीकार किया था और जिससे आगे के सभी चरणों में संविधान को मूल रूप देने की प्रेरणा मिली है। यह संकल्प इस प्रकार है-

1. ''संविधान सभा भारत को स्वतंत्र प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य के रूप में घोषित करने के अपने दृढ़ और सत्यनिष्ठ संकल्प की और भारत के भावी शासन के लिए संविधान बनाने की घोषणा करती है।''

2. जिसमें उन राज्य क्षेत्रों का जो ब्रिटिश भारत में समाविष्ट है, उन राज्यक्षेत्रों का जो अभी देशी रियासतों के भाग है और भारत के उन अन्य भागों का जो अभी ब्रिटिश भारत के बाहर है और ऐसी रियासतों का तथा ऐसे अन्य राज्यक्षेत्रों का जो स्वतंत्र प्रभुत्व सम्पन्न भारत के भाग बनने के लिए सहमत है, मिलकर एक संघ बनेगा, और

3. उक्त राज्यक्षेत्र, अपनी वर्तमान सीमाओं से या ऐसी सीमाओं से जो संविधान सभा के द्वारा या उसकेपश्चातसंविधानिक विधि के अनुसार अवधारित की जाए, स्वायत्त इकाइयों की प्रास्थिति रखेंगे और बने रहेंगे।। उन्हें अवशिष्ट शक्तिया होंगी और वे सरकार और प्रशासन की सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेंगे। केवल ऐसी शक्तियों और कृत्यों को छोड़कर जो संघ में निहित या संघ को समनुदिष्ट है या जो संघ में अन्तर्निहित या विवक्षित है या उसके परिणामस्वरूप है, और

4. प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र भारत की सभी शक्तियां और प्राधिकार, उसके संघटक भाग और शासन के सभी अंग लोक से व्युत्पन्न है, और

5. भारत की जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की तथा विधि के समक्ष समता; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, संगम और कार्य की स्वतन्त्रता विधि और सदाचार के अधीन रहते हुए होगी, और

6. अल्पसंख्यकों के लिए, पिछड़े और जनजाति क्षेत्रों के लिए और दलित और अन्य पिछड़े हुए वर्गो के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जायेंगे, और

7. गणराज्य के राज्य क्षेत्र की अखण्डता और भूमि, समुद्र तथा आकाश पर उसके प्रभुत्वसंपन्न अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार बनाए रखे जायेंगे, और

8. यह प्राचीन भूमि विश्व में अपना समुचित और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी और विश्व शान्ति तथा मानव कल्याण के लिए स्वेच्छा से अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करेगी।''

पण्डित नेहरू के शब्दों में उपर्युक्त संकल्प ''संकल्प से कुछ अधिक है। यह एक घोषणा है, एक दृढ़ निश्चय है, एक प्रतिज्ञा है, एक वचन है और हम सभी के लिए यह एक समर्पण है''।

3.3.2 संविधान की उद्देशिका

उक्त संकल्प में जिन आदर्शों को रखा गया है वे संविधान की उद्देशिका में दिखाई पड़ते है। 1976 में यथासंशोधित इस उद्देशिका में संविधान के ध्येय और उसके उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन हैः-

''हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26-11-1949 ई0 (भिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।''

उद्देशिका को न्यायालय में प्रवर्तित नहीं किया जा सकता। किन्तु लिखित संविधान की उद्देशिका में वे उद्देश्य लेखबद्ध किये जाते है जिनकी स्थापना और संप्रवर्तन के लिए संविधान की रचना होती है। जहाँ संविधान की भाषा में संदिग्धता होती है वहाॅ उद्देशिका संविधान के विधिक निर्वचन में सहायता करती है। उद्देशिका से दो प्रयोजन सिद्ध होते हैः-(क) उद्देशिका यह बताती है कि संविधान के प्राधिकार का स्रोत क्या है; (ख) वह यह भी बताती है कि संविधान किन उद्देश्यों को संवर्धित या प्राप्त करना चाहता है।

हमारे संविधान की उद्देशिका में बहुत ही भव्य और उदात्त शब्दों का प्रयोग हुआ है। वे उन सभी उच्चतम मूल्यों को साकार करते है जिनकी प्रकल्पना मानव-बुद्धि, कौशल तथा अनुभव अब तक कर पाया है।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान के प्रसिद्ध प्रोफेसर सर अर्नेस्ट बार्कर हमारे संविधान की उद्देशिका के मूल पाठ से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसे अपने शोधग्रन्थ के प्राक्कथन के रूप में उद्धृत करते हुए कहाः-

''जब मैंने इसे पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि मैंने अपनी सारी पुस्तक में जो कुछ कहने का प्रयास किया है वह इसमें बहुत थोड़े से शब्दों में रख दिया गया है और इसे मेरी पुस्तक का मूल स्वर माना जा सकता है।''

अभ्यास प्रश्नः-

1.भारतीय संविधान का आधार-तत्व क्या है?
2.भारतीय संविधान के उद्देश्य-संकल्प के बारें में बताइए।
3.प्रस्तावना का संविधान में क्या महत्व है, इसको समझाइए।
वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पंण्डित जवाहर लाल नेहरू के उद्देश्य-संकल्प को संविधान सभा ने किस तिथि को अंगीकार किया था?

(अ) 15 अगस्त 1947 (ब) 26 नवम्बर 1949 (स) 22 जनवरी 1947 (द) 23 जनवरी 1950

3.4. 42वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में हुए संशोधन

आपात स्थिति के दौरान, 1976 के 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा 'समाजवादी' तथा 'पंथनिरपेक्षता' शब्द उद्देशिका में जोड़ दिए गए। इसके अलावा राष्ट्र की एकता 'शब्दों के स्थान पर' राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता शब्द रख दिए गए। यह अनुभव किया गया कि ये विशेषक शब्द, स्थिति का स्पष्टीकरण मात्र करते थे तथा इनसे राज्य व्यवस्था या राज्य के स्वरूप में कोई ठोस अन्तर नहीं पड़ता था। क्योंकि कानून निर्माताओं के अनुसार समाजवाद, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता उद्देशिका में मूल रूप में निर्मित संविधान के शेष भागों में पहले से अन्तर्निहित थे।

3.4.1 प्रस्तावना की संक्षिप्त व्याख्या

42वें संविधान संशोधन के बाद जिस रूप में उद्देशिका इस समय संविधान में विद्यमान है, उसके अनुसार, संविधान निर्माता जिन सर्वोच्च या मूलभूत संवैधानिक मूल्यों में विश्वास करते थे, उन्हें सूचीबद्ध किया जा सकता है। वे चाहते थे कि भारत गणराज्य के जन-जन के मन में इन मूल्यों के प्रति आस्था और प्रतिबद्धता जगे-पनपे तथा आने वाली पीढ़ियाँ, जिन्हें यह संविधान आगे चलाना होगा, इन मूल्यों से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें। ये उदात्त मूल्य इस प्रकार हैं –

1संप्रभुता, 2.समाजवाद, 3.पंथनिरपेक्षता, 4.लोकतन्त्र, 5.गणराज्यीय स्वरूप ,6.न्याय

संप्रभुता

सम्प्रभुता को राज्य का एक अनिवार्य गुण माना जाता है तथा यह एक ऐसी परिशुद्ध तथा सर्वोच्च सत्ता की द्योतक है, जिस पर आंतरिक या वाह्य सत्ता का कोई नियंत्रण नही होता। भारत के संविधान में संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न शक्तियां निहित करने के संबंध में कोई विशिष्ट उपबंध नहीं है। एक ही स्थान ऐसा है जहाँ से संप्रभुता की विद्यमानता तथा संविधान के स्रोत का सुनिश्चय किया जा सकता है वह है उद्देशिका। 'हम भारत के लोग' शब्द हमें अमेरिकी संविधान की उद्देशिका 'हम, संयुक्त राज्यों के लोग' की याद दिलाते है। भारत के संविधान की उद्देशिका में भारतीय संघ के राज्यों के लोगो की बात नहीं कहीं गई है। अमेरिकी संविधान के विपरीत, हमारे संविधान को राज्यों के अनुसमर्थन की कोई जरूरत नहीं है। यह कहकर कि 'हम, भारत के लोग' इस संविधान को स्वीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं, संविधान निर्माताओं ने इस बात की निष्ठापूर्वक पुष्टि की कि हम लोग, भारत के लोग, एक हैं, न कि अलग-अलग राज्यों के लोगों की; और यह कि संविधान को राज्यों के लोगों द्वारा नहीं बल्कि भारत के सभी लोगों द्वारा अविभाज्य प्रभुत्वसम्पन्न इकाई के रूप में उनकी सामूहिक हैसियत में निर्मित तथा स्वीकृत किया गया है। इस बात पर जोर देने का प्रयास किया गया था कि हमारा राष्ट्र एक है, हमारा संविधान एक है, तथा हमारी राज्य-व्यवस्था एक है।

भारत में संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन के बावजूद, इसमें संप्रभुता का कोई विभाजन नहीं है। आपात स्थितियों के दौरान संघ राष्ट्रीय हित में राज्यों के अधिकार क्षेत्र को लांघ सकता है। सामान्य स्थिति के दौरान भी वह अनुच्छेद 249 के अधीन राज्य सूची में समाविष्ट विषयों पर कानून बनाकर राज्यों के क्षेत्र का अतिक्रमण कर सकता है। हमारी राष्ट्रीय संप्रभुता अखंड तथा अविभाज्य है। कोई भी राज्य या राज्यों का समूह संविधान को रद्द नहीं कर सकता या संविधान द्वारा स्थापित संघ से बाहर नहीं जा सकता। हमारे संविधान

निर्माताओं ने प्रारम्भ में ही संघ की अनश्वरता का उपबंध कर दिया। और राज्यों को संघ से अलग होने का कोई अधिकार नहीं दिया। संविधान के अनुच्छेद 1 (3) (ग) में स्प्ष्ट कर दिया गया कि भारत संघ विदेशी राज्य क्षेत्र अर्जित कर सकता है। संघ कतिपय संवैधानिक अपेक्षाओं के अधीन रहते हुए अपने क्षेत्र का त्याग भी कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 2,3 और 4 के अधीन, संघ की संसद साधारण विधान के द्वारा नए राज्यो को संघ में शामिल कर सकती है, या उनकी स्थापना कर सकती है, वर्तमान राज्यों के नाम, क्षेत्र और उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। नागरिक संबंधी उपबंधों के अधीन, भारत के समस्त लोगो को इकहरी नागरिकता प्रदान की गई है।

संविधान निर्माताओं ने हमेशा के लिए यह स्पष्ट कर देने का प्रयास किया कि हमारे देश की कार्यप्रणाली में संप्रभुता स्वंय लोगों में निहित है और यह कि संघ तथा राज्यों के सभी अंग तथा कर्मी अपनी शक्ति भारत के लोगों से ही प्राप्त करते हैं।

समाजवाद

संविधान निर्माता नहीं चाहते थे कि संविधान किसी विचारधारा या वाद विशेष से जुड़ा हो या किसी आर्थिक सिद्धान्त द्वारा सीमित हो। इसलिए वे उसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, समाजवाद के किसी उल्लेख को सम्मिलित करने के लिए सहमत नहीं हुए थे। किन्तु उद्देशिका में सभी नागरिकों को आर्थिक न्याय और प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता दिलाने के संकल्प का जिक्र अवश्य किया गया था। संविधान ने जो ध्येय अपने समक्ष रखा है वह है 'कल्याणकारी राज्य' और 'समाजवादी राज्य' की स्थापना का। कांग्रेस ने 1955 में आवाड़ी सम्मेलन में हुए अधिवेशन में एक संकल्प द्वारा ''समाज की समाजवादी संरचना'' के उद्देश्य को इस प्रकार अभिव्यक्त किया थाः

''कांग्रेस के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ......भारत के संविधान की उद्देशिका और राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों में कथित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजना इस प्रकार की जानी चाहिए कि समाज की समाजवादी संरचना की स्थापना हो सकें। ऐसी संरचना जिसमें उत्पादन के मुख्य साधन सार्वजनिक स्वामित्व या नियन्त्रण में हो, उत्पादन निरन्तर वृद्धिगत हो और राष्ट्रीय धन का साम्यापूर्ण वितरण हो।''

संविधान (42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा उद्देशिका में ''समाजवादी'' शब्द अन्तः स्थापित करके यह सुनिश्चित किया गया था कि भारतीय राज्य व्यवस्था का ध्येय समाजवाद है। समाजवाद के ऊँचे आदर्शों को अभिव्यक्त रूप से दर्शित करने के लिए इसे अन्तः स्थापित किया गया। भारत के संविधान के द्वारा परिकल्पित समाजवाद, राज्य के समाजवाद का वह प्रायिक ढांचा नहीं है जिसमें धन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है और निजी सम्पत्ति का अन्त हो जाता है। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा था,

''हमने यह सदैव कहा है कि हमारा समाजवाद अपने ढंग का है। हम उन्ही क्षेत्रो मे राष्ट्रीयकरण करेंगे जिनमे हम आवश्यकता समझते है। केवल राष्ट्रीयकरण करना यह हमारा समाजवाद नही है''।

समाजवाद का आशय यह है कि आय तथा प्रतिष्ठा और जीवनयापन के स्तर मे विषमता का अंत हो जाए। इसके अलावा, उद्देश्कि मे 'समाजवादी' शब्द जोड दिये जाने के बाद; संविधान का निर्वचन करते समय न्यायालयों से आशा की जा सकती थी कि उनका झुकाव निजी सम्पत्ति, उद्योग आदि के राष्ट्रीयकरण तथा उस पर राज्य के स्वामित्व के तथा समान कार्य के लिये समान वेतन के अधिकार के पक्ष मे होता। किंतु, आर्थिक उदारीकरण, विदेशी पूंजी निवेशन, विदेशी कम्पनियों के खुले प्रवेश, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमो के निजीकरण और खुले

बाजार की प्रतिस्पर्धा की नीतियों के चलते हम संभवतया किसी प्रकार भी समाजवादी मूल्यों के पालन का दावा नही कर सकते।

पंथनिरपेक्षता

अनेक मतों को मानने वाले भारत के लोगो की एकता और उनमे बंधुता स्थापित करने के लिये संविधान मे पंथ निरपेक्ष राज्य का आदर्श रखा गया है। इसका अर्थ है राज्य सभी मतो की समान रूप से रक्षा करेगा और स्वंय किसी भी मत को राज्य के धर्म के रूप मे नही मानेगा। पंथ निरपेक्षता भावना का प्रश्न नहीं है, यह विधि द्वारा प्रतिपादित है। राज्य के इस पंथ निरपेक्ष उद्देश्य को विनिर्दिष्ट रूप से उद्देशिका मे संविधान ;42वॉ संशोधनद्ध अधिनियम ,1976 द्वारा ''शब्द अन्तरूस्थापित करके सुनिश्चित किया गया है। पंथनिरपेक्षता संविधान के आधारिक लक्षणों मे से एक है। हमारे संविधान मे किसी भी मत को ''राजकीय धर्म'' मानने की व्यवस्था नही है। भारतीय संविधान की उद्देशिका मे विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का वचन दिया गया है उसे अनुच्छेद 25-29 में धर्म की स्वतंत्रता से संबंधित सभी नागरिको के मूल अधिकार के रूप मे समाविष्ट करके क्रियान्वित किया गया है। ये अधिकार, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार देते हैं। तथा राज्य की ओर से इसके साथ ही राज्य की विभिन्न संस्थाओ की ओर से सभी धर्मो के प्रति पूर्ण निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं।

जियाउद्दीन बुरहामुद्दीन बुखारी बनाम बृजमोहन रामदास मेहरा एंड ब्रदर्स के मामले में अपना निर्णय सुनाते समय न्यायपूर्ति एम.एच.बेग ने कहा था--

पंथनिरपेक्ष राज्य, पंथ के सभी भेदभावों से ऊपर उठकर, अपने सभी नागरिको का, उनके धार्मिक विश्वासो तथा व्यवहारो की ओर ध्यान दिये बिना ,कल्याण सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। यह सभी जातियो तथा संप्रदायो के नागरिको को लाभ देने मे तटस्थ या निष्पक्ष होता है। मेटलैंड का मत है कि इस प्रकार के राज्यो को अपने कानून के माध्यम से यह सुनिश्चित करना होता हैं कि राजनीतिक या नागरिक अधिकार या उसके अधीन किसी पद या स्थिति को धारण करने या इससे संबन्धित कोई सरकारी कर्तव्य निभाने का अधिकार अथवा सामर्थ्य का अस्तित्व या उसके व्यवहार पर निर्भर न हो।

हमारा संविधान तथा उसके अधीन बनाये गये कानून नागरिको को उनके धार्मिक तथा पूरी पृथक किये जाने पर कानून और राजनीतिक के पंथ निरपेक्ष क्षेत्रों के बीच सुखद और सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने की खुली छूट देते है। किंतु वे एक दूसरे के क्षेत्र का अनुचित अतिक्रमण करने की खुली छूट देते है। किसी विवाद के सिलसिले मे ,यह निर्धारण करना न्यायालयो का काम है कि किसी क्षेत्र मे कोई हस्तक्षेप उचित तौर पर और संविधान के अनुसार हुआ है अथवा नही, भले ही हस्तक्षेप किसी कानूप के द्वारा ही क्यों न हुआ हो।

अयोध्या वाले मामले (ए आइ आर 1995 एस सी 605) मे उच्चतम न्यायालय मे पंथनिरपेक्षता की व्याख्या इस प्रकार की: संवैधानिक योजना से यह स्पष्ट है कि सभी व्यक्तियो और समूहो की,चाहे उनकी आस्था कोई भी हो, मजहब के मामले मे समानता के बर्ताव का विश्वास दिलाती है और इस बात पर जोर देती है कि राज्य का अपना कोई मजहब नही है। विशेषकर कोई अनुच्छेद 25 से 28 के साथ उद्देशिका को पढने से यह पहलू उभरता है कि संविधान की कसौटी पर किसी विधि की संवैधानिक वैधता जॉच करते समय यह ध्यान रखा जाये कि योजना मे मूर्त पंथनिरपेक्षता की संकल्पना सभी भारतीयो द्वारा स्वीकृत एक सिद्धान्त है। भारत के संविधान के पूरे ढॉचे मे सुनहरे धागे की तरह बुना हुआ है।

संविधान निर्माताओ ने एक ऐसे राष्ट्र का सपना संजोया था। जो धर्म, जाति, पंथ की समूची विविधताओं से परे होगा। वे धर्म के खिलाफ नहीं थे, किंतु वे आशा करते थे कि इससे राजनितिक एकता जुटाना संभव होगा और धार्मिक मतभेद राष्ट्र-निर्माण मे बाधक नहीं बनेगे।संविधान मे ऐसी नई समाज व्यवस्था की गयी थी, जो सांप्रदायिक संघर्षो से मुक्त होगी तथा जिसका आधार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय होगा। इसमे एक ऐसी राज्य व्यवस्था का निरूपण किया गया था जिसके अन्तर्गत कानूनो में धर्म, जाति आदि के आधार पर नागरिको के बीच भेदभाव नहीं किया जाएगा। संविधान मे एक ऐसी ''पंथनिरपेक्ष'' व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया जिसके अंतर्गत बहुसंख्यको को राज्य की ओर से कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये या उन्हें कोई प्राथमिकता पाने का अधिकार नहीं दिया गया और अल्पसंख्यको के 'धार्मिक अधिकारो' को अनेक प्रकार से संरक्षण प्रदान किया गया।

लोकतंत्र

लोकतंत्र शाब्दिक दृष्टि से यूनानी शब्द 'क्मउवे' का अर्थ है जनता और 'ज्ञतंजवे' का अर्थ है 'सरकार' या 'शासन'। इसके विपरीत है एक व्यक्ति के निरंकुश शासन वाली बादशाही या तानाशाही और चंद लोगो के शासन वाला कुलीनतंत्र। लोकतंत्र के बुनियादी लक्षण है कि सम्प्रभुता लोगों मे निहित हो, धर्म, जाति, संप्रदाय, शैक्षिक या व्यावसायिक पृष्ठभूमि के स्तर के भेदभाव के बिना, कानून की नजर में सभी बराबर हो और प्रत्येक व्यक्ति को इतना सक्षम समझा जाए कि वह उस तरीके से, जिसे वह उचित समझे, स्वयं पर शासन कर सके तथा अपने निजी कार्य व्यापार का प्रबंध कर सके। लोकतंत्र मे लोग स्वयं पर शासन कर सके तथा अपने निजी कार्य-व्यापार का प्रबंध कर सके। लोकतंत्र मे लोग स्वयं अपने स्वामी माने जाते है उन्हे इस बात का हस्तांतरणीय अधिकार होता है कि स्वयं पर शासन करे या अपने मनचाहे तरीके से तथा उन लोगो द्वारा शासित हो जिन्हे वे चुनें।

लोकतंत्र इस तथ्य को भी स्वीकार करता है कि अनादि काल से मनुष्य से सत्ता या सर्वोच्चता के लिये एक-दूसरे के साथ संघर्ष करता रहा है। लोकतंत्र संघर्ष का अपेक्षाकृत अधिक सभ्य तरीका प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यह सशस्त्र संघर्ष के तरीको के स्थान पर विचार-विमर्श तथा समझाने-बुझाने के तरीकों को प्रस्तुत करता है। कारतूसों की पेटी का स्थान मतपेटी ले लेती हैं। हम एक साथ बैठते है, बातचीत करते है और विचार विमर्श करते हैं। हम अपने दृढ़ निश्चय, विचारों और तर्को के बल पर एक-दूसरे को राजी करने और जीतने की कोशिश करते हैं।

लोकतन्त्रात्मक राज्य व्यवस्था हमारे संविधान की एक बुनियादी विशेषता बन गई है, जिसे किसी भी संवैधानिक संशोधन द्वारा बदला नहीं जा सकता, किन्तु लोकतन्त्र के अनेक रूपान्तर है जिन्हें समान रूप से प्रतिनिधिक तथा उचित माना जा सकता है।

हमने प्रतिनिधिक संसदीय लोकतन्त्र को अपनाया है। संविधान निर्माताओं ने प्रयास किया कि भारी संख्या में देश के समस्त वयस्क लोगों साक्षरता, संपत्ति , आयकर या स्त्री-पुरूष के किसी मानदण्ड के बिना मतदान का अधिकार देकर पूर्ण प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय। इस तथ्य की पुष्टि सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के प्रावधानों से हो जाती है। 18 वर्ष तथा उससे ऊपर के सभी वयस्को-पुरूषों तथा स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद (326) और कार्यपालिका, विधानमण्डल के लोक-सदन के प्रति उत्तररदायी है। अनुच्छेद (75) (3) तथा 164 (2)।

गणराज्यीय स्वरूप

'गणराज्य' की संकल्पना उस राज्य की प्रतीक है, जिसमें जनता सर्वोच्च होती है, जिसमें कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग नहीं होता और सभी सार्वजनिक पदो के द्वार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुले होते है। इसमें कोई वंशानुगत शासक नहीं होता तथा राज्य का अध्यक्ष लोगो द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। उसे सामान्यतया गणराज्य का राष्ट्रपति कहा जाता है। न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह के शब्दों में:'गणराज्य एक ऐसा राज्य होता है जिसमें अंतिम विश्लेषण में सर्वोच्च शक्ति जनता में, न कि राजा जैसे किसी एक व्यक्ति में निहित होती है।'' मेडिसन ने फेडरलिस्ट में कहा हैः

''गणराज्य एक ऐसी शासनप्रणाली है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी शक्तियां आम जनता से प्राप्त करती है, और वह उन व्यक्तियों द्वारा शासित होती है जो अपने पद सीमित अवधि के लिए, लोगो के प्रसादपर्यन्त या अच्छे व्यवहार पर्यन्त धारण करते है।''

भारत एक गणराज्य है; इस विषय में उद्देशिका में जो उल्लेख किया गया है, वह बहुत ही व्यापक अर्थो में किया गया है। 26 जनवरी, 1950 को संविधान के लागू होने के साथ ही भारत डोमिनियन नहीं रहा तथा क्राउन के प्रति उसकी कोई राजनिष्ठा नहीं रही। संघ का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है जो एक नियत अवधि के लिए जनता के प्रतिनिधियों के निर्वाचक मण्डल द्वारा चुना जाता है। विधि की नजर में सभी नागरिक बराबर होते है; कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ही नहीं होता और नस्ल, जाति, स्त्री-पुरूष या संप्रदाय के आधार पर किसी भेद के बिना सभी सार्वजनिक पदों के द्वार प्रत्येक नागरिक के लिए खुले होते है।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता

भारत स्वाधीनता के बाद भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने का निर्णय किया, पर इसने प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्र के रूप में या एक गणराज्य के रूप में अपनी स्थिति के बारें में किसी तरह का कोई समझौता नहीं किया या अपनी प्रतिष्ठा में किसी कमी का संकेत नहीं दिया। वास्तव में, राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तरण हो गया। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से यह राष्ट्रों का राष्ट्रमण्डल बन गया। वह समान तथा पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों का एक स्वच्छंद संगम हो गया जिसमें क्राउन को केवल स्वच्छंद संगम के एक प्रतीक के रूप में स्वीकार कर लिया गया। राष्ट्रमण्डल ने विशिष्ट रूप से भारत की स्थिति को एक संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य के रूप में स्वीकार किया। नेहरू जी के शब्दों में नया राष्ट्रमण्डल 'स्वेच्छा से किया गया एक करार है' जिसे 'किसी भी समय स्वेच्छा से समाप्त किया जा सकता है।' इसलिए, राज्य के प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक या गणराज्यीय स्वरूप पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सामाजिक तथा आर्थिक लोकतन्त्रः-

राजनीतिक रूप से कल्पित लोकतन्त्र का अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक को नियत समय पर होने वाले चुनावों में स्वच्छंद रूप से मतदान करने का अधिकार है। सभी लोकतान्त्रिक चुनावों में 'एक व्यक्ति; एक वोट' के जिस सिद्धान्त को लागू किया जाता है, उसका उद्गम इस तथ्य की स्वीकृति से हुआ है कि सभी व्यक्तियों के अधिकार समान है चाहे वे उच्च शिक्षा प्राप्त है या निरक्षर, विशेषज्ञ है या टेक्नोक्रेट, उद्योगपति है या श्रमिक। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओं की दृष्टि में लोकतन्त्र का अर्थ राजनीतिक लोकतन्त्र या नियत समय पर लोगो द्वारा अपने प्रतिनिधियों को चुनने के लिए मतदान करने का अधिकार मात्र नहीं है। सामाजिक तथा आर्थिक लोकतन्त्र के बिना

भारत जैसे गरीब देश में राजनीतिक लोकतन्त्र का कोई अर्थ नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार, सामाजिक तथा आर्थिक लोकतन्त्र वास्तविक उद्देश्य तथा अंतिम लक्ष्य है। उन्होंने कहा था कि संसदीय लोकतन्त्र तभी सार्थक होगा जब उसका सदुपयोग आर्थिक लोकतन्त्र के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाय। जवाहर लाल नेहरू ने बाद में विचार व्यक्त किया था कि उनकी कल्पना का लोकतन्त्र लक्ष्य प्राप्त करने का साधन मात्र है। लक्ष्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा उत्तम जीवन मिले जिसमें कुछ हद तक आवश्यक आर्थिक जरूरतों की पूर्ति हो। जिस परिणाम में लोकतन्त्र आर्थिक समस्याओं को हल करने में सफल होता है, उसी परिणाम में वह राजनीतिक क्षेत्र में भी सफल होता है। यदि आर्थिक समस्याए हल नहीं होती तो राजनीतिक ढॉचा कमजोर हो जाता है तथा टूट जाता है। इसलिये हमे राजनैतिक लोकतन्त्र से आर्थिक लोकतन्त्र की ओर बढ़ना चाहिए। जिसका अर्थ है, ''कुछ हद तक समस्त लोगो के कल्याण के लिये कार्य किया जाय''। इससे कल्याणकारी राज्य कहा जा सकता है किन्तु इसका अर्थ यह भी है ''आर्थिक क्षेत्र में कुछ हद तक अवसर की समानता के लिए कार्य किया जाय'' इस बात को उद्देशिका के इन शब्दों द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है कि गणराज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिले।

न्याय

भारतीय संविधान के उद्देशिका में सभी नागरिको को न्याय का आश्वासन दिया गया है। न्याय का अर्थ है व्यक्तियों के परस्पर हितों, समूहो के परस्पर हितों के बीच और एक ओर व्यक्तियों तथा समूहो के तथा दूसरी ओर समुदाय के हितो के बीच सामंजस्य स्थापित हों। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उद्देशिका में न्याय को स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता के सिद्धान्तों से ऊँचा स्थान दिया गया है। न्याय की परिभाषा या व्याख्या सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के रूप में की गयी है इसमें भी सामाजिक तथा राजनैतिक न्याय से उच्चतर स्थान दिया गया है। उद्देशिका की भावना यह है कि सभी लोगों को जिनमें कामगार भी शामिल है, सामाजिक, आर्थिक न्याय मिलें।

सामाजिक न्याय से आशय यह है कि सभी नागरिकों को समान समझा जाता है और जन्म, मूलवंश, जाति, धर्म, स्त्री- पुरूष उपाधि आदि के कारण उनकी प्रतिष्ठा या न्याय के मामलों में कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। अनुच्छेद 15 में सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश के मामले में विभेद या निर्योग्यता का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 38 में राज्य को निर्देश दिया गया है कि वह 'ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके ''लोककल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करें। जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में; ''सामाजिक न्याय ने सदैव संवेदनशील व्यक्तियों को आकर्षित किया है। मेरे विचार में, मार्क्सवाद के प्रति करोड़ो लोगो का बुनियादी आकर्षण इसलिये नहीं था कि उसने वैज्ञानिक सिद्धान्त को अपनाने का प्रयास किया बल्कि उसका कारण था सामाजिक न्याय के प्रति उसका गहरा लगाव''।

काम की मानवोचित दशाओं, प्रसूति सहायता, अवकाश, पिछड़े वर्गो के आर्थिक हितों की अभिवृद्धि, न्यूनतम मजदूरी, बेगार के प्रतिषेध आदि से सम्बन्धित समस्त प्रावधानों (अनुच्छेद 23 तथा 43) का लक्ष्य सामाजिक न्याय है।

आर्थिक न्याय में अपेक्षा की जाती कि अमीरो तथा गरीबों के साथ एक सा व्यवहार किया जाय और उनके बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया जाय। आर्थिक न्याय के उद्देश्य के अनुसरण में, अनुच्छेद 39 राज्यों को निर्देश

देता है कि वह इस बात को सुनिश्चित करें कि सभी नागरिकों का जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त हो, समाज की भौतिक सम्पदा के स्वामित्व और नियन्त्रण का बटवारा इस प्रकार हो कि उससे सामूहिक हित सर्वोतम रूप से सिद्ध हो; आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि उससे धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण सामूहिक हित के प्रतिकूल न हो, पुरूषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले; स्त्रियों और बच्चों का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो और बच्चों को स्वतन्त्र तथा गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाए दी जाए और बालकों की सुकुमार अवस्था की शोषण आदि से रक्षा की जाए।

वास्तव में संविधान के भाग 4 में विभिन्न अन्य अनुच्छेदों (अनुच्छेद 36 से 51) का लक्ष्य भी न्याय से अनुप्राणित एक नई सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था सुनिश्चित करना है। इस प्रकार उसमें कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोकसहायता पाने का अधिकार का, काम की न्याय संगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का, कर्मकारों के लिये निर्वाह मजदूरी आदि का बालकों के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का, कमजोर वर्गो के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों की अभिवृद्धि का और कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण आदि का उपबंध किया गया है।

राजनीतिक न्याय का अर्थ है कि जाति, मूलवंश, सम्प्रदाय, धर्म या जन्मस्थान के आधार पर विभेद के बिना सभी नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के अधिकारों में बराबर का हिस्सा मिले। अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता की गांरटी दी गई है और अनुच्छेद 325 तथा 326 में सभी वयस्को को चुनावों में भाग लेने के बराबर के अधिकार दिए गए है। नेहरू तथा अंबेडकर जैसे संविधान निर्माताओं का यह स्पष्ट मत था कि आर्थिक न्याय के बिना राजनीतिक न्याय निरर्थक है।

स्वतंत्रताः- सही अर्थ में लोकतंत्र की स्थापना तभी हो सकेगी। जब स्वतंत्र और सभ्य जीवन के लिये आवश्यक न्यूनतम अधिकार समुदाय के प्रत्येक सदस्य को सुनिश्चित हो जाते है। उद्देशिका में व्यक्ति के उन आवश्यक अधिकारों का 'विचार, अभिवयक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता' के रूप में उल्लेख किया गया है। इन अधिकारों को संविधान के भाग 3 द्वारा राज्य के सभी प्राधिकारियों के विरूद्ध प्रत्याभूत किया गया है। (अनुच्छेद 19,25-28)। यह सामान्य हित के लिये निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन (अनुच्छेद 31ग) और 1976 के 42वें संविधान संशोधन द्वारा अन्तः स्थापित 'मूल कर्त्तव्य' (अनुच्छेद 51क) के अधीन रहते हुए है।

स्वतंत्रता को सामाजिक आत्मसंयम से संयुक्त और सामान्य प्रसन्नता के लिये सर्वाधिक लोगों की स्वतंत्रता के **अधीन होना चाहिए।**

समानता -'समानता' का अर्थ यह नहीं हैं कि सभी पुरूष और स्त्रियां सभी परिस्थितियों में बराबर है। उनके बीच शारीरिक, मानसिक और आर्थिक अंतर तो होगे ही। हमारी उद्देशिका में केवल प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता की संकल्पना का समावेश किया गया है। इसके कानूनी, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलू है। सभी नागरिक विधि की नजर में बराबर है और उन्हें देश की विधियों का समान रूप से संरक्षण प्राप्त है। सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश तथा लोक नियोजन के विषय में धर्म, मूलवंश, जाति, स्त्री-पुरूष या जन्म स्थान के आधार पर एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच कोई विभेद नहीं हो सकता। सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के मतदान करने तथा शासन की प्रक्रिया में भाग लेने के राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने का बराबर का अधिकार है। आर्थिक क्षेत्र में समानता का अर्थ है कि एक-सी योग्यता तथा एक-से श्रम के लिये वेतन भी एक-सा होगा। इसके

अलावा, एक व्यक्ति या एक वर्ग अन्य व्यक्तियों या वर्गो का शोषण नहीं करेगा। प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता की संकल्पना को अनुच्छेद 14 से 18 में ठोस आकार तथा रूप दिया गया है।

बंधुता

न्याय, स्वतंत्रता, और समानता के आदर्श तभी तक प्रासंगिक तथा सार्थक होते है जब तक वे भाईचारे की, भारतीय बंधुत्व की, एक ही भारत माता के सपूत होने की सर्वसाझी भावना को बढ़ावा देते है और इसमें जातीय, भाषाई, धार्मिक और अन्य अनेक प्रकार की विविधताएं आड़े नहीं आती। सर्वसामान्य नागरिकता से संबंधित उपबंधों का उद्देश्य भारतीय भाईचारे का निर्माण करना है। सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के मूल अधिकारों की जो गारंटी दी गई हैं और सामाजिक तथा आर्थिक समानता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये जो निर्देशक सिद्धान्त बनाए गए है उनका उद्देश्य भी बंधुता को बढ़ावा देना है। इस संकल्पना को संविधान के नए भाग 4 (क) में विशिष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है और उसमें नागरिकों के मूल कर्तव्य निर्धारित किए गए है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कर्तव्य भी सौंपा गया है कि वे सभी धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या वर्गगत विविधताओं को लांघकर भारत के सभी लोगो मे समरसत्ता और सर्वसामान्य भाईचारे की तथा एक भारतीय परिवार से संबंध रखने की भावना को बढ़ावा दे। वास्तव में, बंधुता की संकल्पना पंथनिरपेक्षता की संकल्पना से कहीं अधिक व्यापक है। यह धर्म तथा राजनीति के पृथक्करण, धर्म की स्वतंत्रता, सभी धर्मो के प्रति समान आदर आदि से कही आगे जाती है। डॉ0 अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा कि - बंधुता का अर्थ क्या हैं? बंधुता का अर्थ है सभी भारतीयों के सर्वसामान्य भाईचारे की, सभी भारतीयो के एक होने की भावना यही सिद्धान्त सामाजिक जीवन को एकता तथा अखण्डता प्रदान करते है उसे प्राप्त करना कठिन है।

बंधुता का एक अंतर्राष्ट्रीय पक्ष भी है जो हमें विश्व बंधुत्व की संकल्पना 'बसुधैव कुटुंबकम्'-अर्थात समूचा विश्व एक परिवार है - के प्राचीन भारतीय आदर्श की ओर ले जाता है। इसे संविधान के अनुच्छेद 51 में निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

व्यक्ति की गरिमा - जब तक प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा की रक्षा न की जाए तब तक बंधुता की स्थापना नहीं हो सकती। संविधान निर्माताओं के मन में व्यक्ति की गरिमा सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि स्वतंत्रता, समानता आदि के मूल अधिकारों की गारंटी करके तथा निर्देशक तत्वों के रूप में राज्य को ये दिशा निर्देश जारी करके कि वह अपनी नीतियों को इस प्रकार ढाले कि सभी नागरिकों को अन्य बातों के साथ-साथ जीविका के पर्याप्त साधन, काम की न्यायसंगत तथा मानवोचित दशाएं और एक समुचित जीवन-स्तर उपलब्ध कराया जा सके, व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाया जाये।

अनुच्छेद 17 में दिए गए मूल अधिकार का उद्देश्य अस्पृश्यता के आचरण का अन्त करना था, जो मनुष्य की गरिमा का अपमान था। अनुच्छेद 32 में ऐसा उपबंध किया गया कि कोई व्यक्ति अपने मूल अधिकारों के प्रवर्तन तथा अपनी व्यक्तिगत गरिमा के रक्षा के लिये सीधे उच्चतम न्यायालय के पास भी जा सकता है।

राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता -व्यक्ति की गरिमा को तभी सुरक्षित रखा जा सकता है, जब राष्ट्र का निर्माण हो तथा इसकी एकता और अखण्डता सुरक्षित रहे। भाईचारे तथा बंधुत्व की भावना के द्वारा ही हम अत्यधिक बहुवादी तथा पंचमेल समाज में राष्ट्रीय एकता का निर्माण करने की आशा कर सकते है। इसके अलावा, राष्ट्र की एकता तथा अखंडता के बिना, हम अपने आर्थिक विकास के प्रयासों में सफल नहीं हो सकते और न ही हम लोकतन्त्र या देश की स्वाधीनता तथा देशवासियों के सम्मान की रक्षा करने की आशा कर सकते है। इसलिये,

अनुच्छेद 51 (क) के अन्तर्गत सभी नागरिकों का यह कर्तव्य बना दिया गया है कि वे भारत की संप्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखे। कम-से-कम ऐसे मामलों में, जो राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता के लिये खतरा बन सकते हो, सभी नागरिकों से यह आशा की जाती है कि वे सभी भेदभावों को भुलाकर तथा अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर उनका सामना करे। यदि ऐसा नहीं होता तो राष्ट्र-निर्माण का कार्य असंभव हो जाता है।

निष्कर्ष- हमारे संविधान की उद्देशिका में समाविष्ट विभिन्न संकल्पनाओं तथा शब्दों से पता चलता है कि हमारी उद्देशिसका के उदान्त और गरिमामय शब्द भारत के समूचे संविधान के सारांश, दर्शन, आदर्शो और उसकी आत्मा का निरूपण करते है। उद्देशिका में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र को समानता और बंधुता से जोड़ते हुए जो स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है उसे महात्मा गाँधी ने 'मेरे स्वप्नों का भारत' कहा है। हमारी उद्देशिका में किए गए है इस सफल संयोजन की अर्नेस्ट बार्कर ने प्रशंसा की है। उन्होनें अपनी पुस्तक 'सोशल एण्ड पोलिटिकल थ्योरी' के प्रारम्भिक भाग में उस उद्देशिका को उद्धरित किया है और यह सम्प्रेक्षण किया है कि भारत के संविधान की उद्देशिका में -

''इस पुस्तक के समस्त तर्क संक्षेप में समाहित है और वह इस पुस्तक की कुंजी के रूप में कार्य कर सकती है।''

अभ्यास प्रश्न:-

1. भारतीय संविधान की उद्देशिका में वर्णित शब्दों की व्याख्या कीजिए।

2. उद्देशिका का संविधान में क्या महत्व है? भारतीय संविधान भी उद्देशिका के मुख्य लक्षण लिखिए।

3. भारतीय संविधान के उद्देशिका के संवैधानिक महत्व पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न:-

1.भारतीय संविधान में 42वां संविधान संशोधन किस वर्ष हुए।

क. 1960 .ख. 1978 ग 1996 घ. 1976

2. 42वें संविधान संशोधन द्वारा उद्देशिका में कौन-सा शब्द जोड़ा गया -

क. लोकतांत्रिक ख . राजनैतिक ग व्यक्ति की गरिमा घ.समाजवादी

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -संविधान का आधार-तत्व क्या है इसको समझ सकेगे।संविधान का दर्शन क्या है इसको जान गये होगे।42 वें संविधान संशोधन के बारे में समझ सकेगे।संप्रभुता, लोकतन्त्र, गणराज्य को जान सकेगे। समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, न्याय स्वतंत्रता, समानता को जान सकेगे।बंधुता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता को समझ सकेगे।

3.6. शब्दावली

दर्शन - किसी सोच और काम को दिशा देने वाले सबसे बुनियादी विचार

प्रस्तावान - संविधान का बुनियादी मूल्य और अवधारणाएं।

प्रारूप - किसी कानूनी दस्तावेज का प्रारम्भिक रूप

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.3.2 का प्रश्न नं0 01 (स)

3.4.1 प्रश्न 01 का (घ) , 02 (घ.)

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट,

2.बसु, डी0डी0, भारत का संविधान-एक परिचय, नागपुर, वाधवा

3. Kagzi, M.C. Jain- ***The Constitutional of India Vol I &2*** New Delhi, India Law House, 2001.

4. Keith, Arthur Berriedale- ***A Constitutional History of India 1600-1935,*** London, Methuan & Co.Ltd, 1937

5. Austin, Granville – ***Working a Democratic Constitution: The Indian Experience,*** Delhi Oxford University Press 1999.

6. Sharma, Brij Kishore – ***Introduction to the Constitution of India*** New Delhi, Prentice – Hall of India, 2005.

7. Pandey J.N. – ***Constitutional Law of India,*** Allahabad, Central Law Agency, 2003.

8. Pylee, M.V. ***Constitutional Amendments in India,*** Delhi, Universal Law, 2003.

9. Jois, Justice M.Rama – ***Legal and Constitutional History of India,*** Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.

10. Kautilya – ***The Constitutional History of India 2002,*** Bombay: C Jammadas & Co. Educational and Law Publishers.

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

1. काश्यप, सुभाष, हमारी संसद, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011

2. भारत 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,

3.राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार।

4.चन्द्र बिपिन - भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. Agrawal, R.N. ***National Movement and Constitutional Development of India*** – Nineth (Revised) Edn. New Delhi Metropolitan book Co. (Pvt) Ltd. 1976

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की उद्देशिका आज तक अंकित इस प्रकार के प्रलेखों में सबसे उत्तम है। इसकी व्याख्या कीजिए।

2. ''उद्देशिका जो संविधान की भूमिका है, संविधान के स्त्रोत, अनुशक्ति, ढाँचे, उद्देश्य तथा विषय-वस्तु की चर्चा करता है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए। भारतीय संविधान की उद्देशिका में वर्णित शब्दों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 4 : भारतीय संविधान का स्वरुप

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 संविधान की प्रस्तावना
4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
4.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान
4.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान
4.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य
4.4.4 पंथ निरपेक्ष
4.4.5 समाजवादी राज्य
4.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय
4.4.7 संसदीय शासन प्रणाली
4.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन
4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
4.6 लोक कल्याणकारी राज्य
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

इस इकाई में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि-

1.भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

2.भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

3.भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

4.आप जान सकेगें कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है।

4.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

> " हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
> सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
> विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
> प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
> उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
> सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए
> दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. 4.गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. 5.न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

4.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग .... । '

4.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्ल्भारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिर्देशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

4.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

4.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्राव धान नहीं किया था इसका प्रावधान 42 वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है ।इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।-

4.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन् का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

4.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉं के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	संघीयतंत्र, लोक सेवा आयोग, आपातकालीन उपबंध, प्रशासनिक विवरण
ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन, विधिका शासन, मंत्रीमंडल प्रणाली
अमरीकी संविधान	मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धांत
आयरलैण्ड का संविधान	नीति निर्देशक तत्व, राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्दति
कनाडा का संविधान	सशक्त केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था, अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास होना

आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची, संसद के दोनों सदन की संयुक्त बैठक
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया, राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन
पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य, प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक और राजनितिक न्याय

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रुप से भाग 4 के नीति निर्देशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य /असत्य/

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य असत्य/

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्यअसत्य/

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है । सत्यअसत्य/

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है । सत्यअसत्य/

4.7 सारांश

इकाई 4 के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है। जिसमें जिसमे विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए । जैसे मूल अधिकार और नीतिनिर्देशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की

स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है।इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

4.8 शब्दावली

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 5 : नागरिकता

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 नागरिकता
    5.3.1 नागरिकता का अर्थ एवं महत्व
    5.3.2 नागरिकता का ऐतिहासिक विकास
    5.3.3 नागरिकता के विविध पक्ष
    5.3.4 नागरिकता के सिद्धान्त
    5.3.5 नागरिकता के सिद्धान्त की समालोचनायें
    5.3.6 नागरिकता के संवैधानिक उपबन्ध
    5.3.7 नागरिकता अधिनियम 1955
    5.3.8 नागरिकता का अर्जन
    5.3.9 नागरिकता की समाप्ति
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एक नागरिक राजनीतिक समुदाय का सहभागी सदस्य होता है। राष्ट्रीय, राज्य या स्थानीय सरकार की कानूनी आवश्यकताओं व औपचारिकता को पूरा करके नागरिकता प्राप्त की जा सकती है। एक राष्ट्र अपने नागरिकों को कुछ अधिकार और विशेषाधिकार देता है। अतएव नागरिक अधिकारों का श्रोत नागरिकता का विचार है परन्तु मानव अधिकारों का विचार नागरिकता की सीमाओं से बधा नहीं है। हो सकता है किसी राज्य में किसी अपराधी का विक्षिप्त व्यक्ति को नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। परन्तु फिर भी उसे उपयुक्त मानव अधिकारों का पात्र माना जायेगा। मानव अधिकार ऐसे अधिकार है जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए। बिना मानव अधिकार के हम नागरिकता की संकल्पना को सार्थक नहीं बना सकते। जब प्रत्येक देश में नागरिकों को उनके अधिकार मानव होने के नाते मिल जायेगे तथा वह व्यक्ति देश की शासन व्यवस्था में भाग लेगा तभी सही अर्थ में वह उस राज्य का पूर्ण नागरिक कहलायेगा। आज के युग में नागरिकता की पहचान अधिकारों से की जाती है।

प्राचीन काल एवं मध्यकाल में नागरिकों में बड़ी ही असमानता थी। उनको स्वतंत्रता, समानता, विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, अर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। दास, श्रमिक, स्त्री आदि को नागरिक नहीं माना जाता था। मध्यकाल में राजा के पास सारे अधिकार केन्द्रित थे राजा ही कानून बनाता था। वही कानूनो का क्रियान्वयन करता था एवं वही न्यायिक कार्य भी करता था। अर्थात विधायिका कार्यपालिका एवं न्यायपालिका एक जगह केन्द्रित थी। इसलिए नागरिकों को सही न्याय नहीं मिल पाता था। वर्तमान समय में विश्व के अधिकतर देशों में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली अपनायी गयी है। जहां पर नागरिकों को अधिक से अधिक अधिकार एवं स्वतंत्रताएं मिली हुई है।

प्रत्येक राज्य में दो तरह के लोग होते है। नागरिक एवं विदेशी। नागरिक राज्य के पूर्ण सदस्य होते है और उनकी अपने राज्य पर पूर्ण निष्ठा होती है। इन्हें सभी सिविल और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते है। दूसरी ओर विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते है इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते है। नागरिकता का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि विभिन्न देशों में अलग-अलग नागरिकता प्राप्त करने के तरीके है किसी देश में एकल नागरिकता मिली हुई है तो किसी देश में दोहरी नागरिकता। एक केन्द्र सरकार तथा दूसरी राज्य सरकार द्वारा। जैसे- भारत में एकल नागरिकता है तो अमेरिका में दोहरी नागरिकता।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत नागरिकता से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया जायेगा। वर्तमान समय में दुनिया के विभिन्न देशों में सरकार का स्वरूप एवं उनकी अपनी कार्यप्रणाली है। उस सन्दर्भ में नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्य की गहरी समझ आवश्यक हो जाती है। अतः इस इकाई के सम्यक एवं गहन अध्ययन के पश्चात आप-

1) नागरिकता के अर्थ एवं महत्व को समझ सकेंगे।
2) नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्य से अवगत हो सकेंगे।
3) नागरिकता के ऐतिहासिक विकास को क्रमबद्ध रूप से समझ सकेंगे।
4) नागरिकता के विविध पक्षः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार से अवगत हो सकेंगे।
5) भारतीय सन्दर्भ में नागरिकता से सम्बन्धित उपबन्धों को समझ कर अपने अधिकारों के लिए कानूनी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
6) वर्तमान समय में नागरिकों के कानूनी अधिकार एवं उसकी व्यवहारिकता पर अपने विचार रख सकेंगे।

5.3 नागरिकता

इस नागरिकता के अन्तर्गत हम नागरिकता के अर्थ, महत्व, परिभाषा तथा उसके संवैधानिक उपबंध पर चर्चा करेगे। नागरिकता का विकास कैसे हुआ विभिन्न समय में नागरिकता की क्या स्थिति थी। इसका ऐतिहासिक अवलोकन विस्तार पूर्वक करते हुए यह जानेंगे कि इसकी वर्तमान वैश्विक स्थिति क्या है तथा विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में कैसी नागरिकता लोगों को मिली हुई है। इस प्रकार हम नागरिकताके विभिन्न पक्ष का अवलोकन करते हुए भारत के सन्दर्भ में नागरिकता की कानूनी स्थिति का अध्ययन करेगे तथा इसके साथ-साथ यह भी जानेंगे कि भारत में किस प्रकार से नागरिकता का अर्जन किया जा सकता है तथा उसकी समाप्ति के क्या कारण हो सकते हैं।

5.3.1 नागरिकता का अर्थ एवं महत्व

नागरिकता का अर्थ है वह स्थित जिसमें व्यक्ति किसी राजनीतिक समुदाय का पूर्ण और उत्तरदायी सदस्य होता है और सार्वजनिक जीवन में भाग लेता है। नागरिक ऐसा व्यक्ति है जो राज्य के प्रति निष्ठा रखता है और उसे राज्य का संरक्षण प्राप्त होता है। नागरिकता का विचार बहुत पुराना है परन्तु आधुनिक युग में यह राष्ट्र राज्य के अन्तर्गत व्यक्ति को हैसियत का संकेत देता है। इस संदर्भ में औपचारिक नागरिकता और तात्विक नागरिकता में अन्तर करना उपयुक्त होगा। औपचारिक नागरिकता के लिए राष्ट्र राज्य की सदस्यता पर्याप्त मानी जाती है। दूसरी ओर किसी राष्ट्र राज्य के अन्तर्गत अपनेपूर्व सदस्यों को जो नागरिक राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त होते है वे तात्विक नागरिकता की परिभाषा में आते हैं। किसी राज्य में व्यक्ति को नागरिकता किन किन शर्तों पर प्राप्त होगी यह उस राज्य के संविधान और कानून पर निर्भर है।

देखा जाय तो नागरिकता की मूल संकल्पना कर्तव्य भावना के साथ जुड़ी थी और उसमें अधिकारों का विचार गौण था। परन्तु आज के युग में नागरिकता की पहचान अधिकारों से की जाती है और व्यक्ति के कर्तव्य वही तक स्वीकार किये जाते है जहां तक वे इन अधिकारों को कायम रखने के लिए जरूरी हो, अगर व्यापक रूप से देखा जाय तो नागरिकता राज्य एवं व्यक्ति के बीच कानूनी सम्बन्ध का प्रतीक है। नागरिकता कुछ अधिकार, दायित्व एवं कर्तव्य प्रदान करती है। किसी आधुनिक राज्य के निवासियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। नागरिक और विदेशी।

5.3.2 नागरिकता का ऐतिहासिक विकास

नागरिकता का विचार अपने आरम्भिक रूप में प्रचीन यूनानी और रोमन राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत देखने को मिलता है। यह बात याद रखने की है कि प्राचीन यूनानी राजनीतिक समुदाय का स्वरूप आज के लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य के राजनीतिक समुदाय के सर्वथा भिन्न था। आज के लोकतांत्रीय राज्य के सभी स्थायी सदस्य वहां के नागरिक माने जाते हैं परन्तु प्रचीन यूनानी नगर राज्य के निवासियों में बहुत थोड़े लोग स्वतंत्र जन होते थे। जो पूर्ण नागरिक माने जाते थे। इन नागरिकों के अधिकार अवश्य समान थे इनमें धनवान और निर्धन में कोई भेदभाव नहीं बरता जाता था। शेष समुदाय में दास स्त्रियों और अन्य देशी आते थे जिन्हें कोई नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। अतः अरस्तू ने नागरिकता को शासन वर्ग का विशेषाधिकार माना है यह शक्ति के प्रयोग में प्रभावशाली सहभागिता का संकेत देती थी। अरस्तू कहता है, नागरिक वही है, जो न्याय व्यवस्था एवं व्यवस्थापिका के एक सदस्य के रूप में भाग लेता है। दोनों में या एक में क्योंकि ये दोनों ही प्रभुसत्ता के मुख्य कार्य है। अरस्तू के अनुसार राज्य मे निवास करने से सभी लोगों को नागरिकता नहीं मिल जाती वह श्रमिक एवं दासों को नागरिकता की परिधि से बाहर रखता है। उसने किसी मनुष्य के राज्य में निवास करते हुए भी नागरिक न होने की निम्नलिखित चार दशाएं बतलाई है-

1.राज्य के किसी स्थान-विशेष में निवास करने मात्र से नागरिकता नहीं मिल सकती।

2.किसी पर अभियोग चलाने का अधिकार रखने वाले व्यक्ति को भी नागरिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि सन्धि द्वारा यह अधिकार विदेशियों को भी दिया जा सकता है।

3.उन व्यक्तियों को नागरिक नहीं माना जा सकता, जिनके माता पिता किसी दूसरे राज्य के नागरिक है क्योंकि ऐसा करने से हम नागरिकता निर्धारण के किसी सिद्धान्त का निर्माण नहीं करते।

4.निष्कासित तथा मताधिकार से वंचित व्यक्ति भी राज्य के नागरिक नहीं हो सकते।

यूनान के किसी भी राज्य में विदेशियों, दासों, स्त्रियों तथा बच्चों को नागरिकता के अधिकार प्रदान नहीं किये गये थे। यूनानी नागरिकता आधुनिक नागरिकता की अपेक्षा बहुत अधिक संकुचित थी। इसी दृष्टि से अरस्तू ने भी स्वाभाविक रूप से राज्य के सभी निवासियों को नागरिक स्वीकार नहीं किया। उसने यह तर्क दिया कि नागरिकता एक विशेष गुण है जिसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है। यह गुण प्रत्येक निवासी में नहीं पाया जाता।

कुछ भी हो प्राचीन यूनानी चिंतन में शासक वर्ग के इस विशेषाधिकार को कर्तव्य का रूप देकर इसके पालन पर बल दिया गया है ताकि राजनीति समुदाय के सब लोगों को अर्थात नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों तरह के लोगों को उत्तम जीवन प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो। यूनानी नगर राज्यों के पतन के बाद रोमन साम्राज्य के युग में नागरिकता की नई परिभाषा विकसित की गई। शुरू-शुरू में वहां नागरिकता सत्ताधारियों का विशेषाधिकार थी परन्तु बाद में सामान्य जनों और युद्ध में पराजित लोगों को भी नागरिकों का दर्जा दे दिया गया इससे तरह तरह के लोग नागरिकों की श्रेणी में आ गये केवल निम्नतम श्रेणी के लोगों और स्त्रियों को नागरिकता के दायरे से बाहर रखा गया। मध्ययुगीन यूरोप में जब राजनीतिक सत्ता पर धार्मिक सत्ता का वर्चस्व स्थापित हो गया तब सांस्कृतिक नागरिकता का विचार विशेष चर्चा का विषय नहीं रहा। 15वीं-16वीं शताब्दी में जब पुर्नजागरण आलोक में आधुनिक चिंतन का उदय हुआ तब इतालवी गण राज्यों में नागरिकता का विचार फिर से आकर्षण का केन्द्र बना।

विख्यात इतालवी विचार निकोलो मैक्यिावली (1469 से 1527) ने इस विचार को नया जीवन प्रदान किया। सत्रहवीं शताब्दी में जेम्स हरिंगटन (1611-1677) और मिल्टन (1608-1674) ने इसका पुनर्निरूपण किया हैरिंग्टन ने भविष्य के लिए ऐसी आदर्श व्यवस्था का चित्र खींचा जो कानूनों का सम्राज्य होगा मनुष्यों का नहीं। इग्लैण्ड की गौरवमय क्रांति (1688) के समर्थकों ने नागरिकता के विचार को विशेष रूप से लोकप्रिय बनाया। 18वीं शताब्दी में अमरीकी क्रांति (1776) के दिनों में यह विचार अमरीका में बहुत लोकप्रिय रहा।

नागरिकता का विश्वजनीन आदर्श फ्रांसीसी क्रांति (1789) तथा मानव एवं नागरिक के अधिकारों की घोषणा के साथ पूरे उत्कर्ष पर पहुंचा। इस घोषणा के अन्तर्गत जे॰जे॰ रूसो के विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। रूसों ने अपनी कृति सामाजिक अनुबंध (1762) के अन्तर्गत लिखा था कि नागरिक एक स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्ति है। वह उन सब निर्णयों में भाग लेने का हकदार है जो सब नागरिकों के लिए वाध्यकर होते हैं। यूरोप में वाणिज्य समाज के उदय को देखकर रूसों ने यह स्पष्ट अनुभव किया था कि इस समाज में समान्य हित और निजी हितों में तनाव पैदा होना स्वाभाविक है और यह तनाव समाज की एकता को छिन्न भिन्न कर देगा। रूसो ने सोच समझकर सामन्य हित के विचार को निजी हितों की मांग से ऊपर रखा।

उन्नीसवीं शताब्दी मे उदारवाद के उत्कर्ष के साथ बाजार संबंधों का विकास हुआ जिसने नागरिकता की नई धारणा को बढ़ावा दिया। अब प्राकृतिक अधिकारों के विचार को नागरिकता का आधार माने जाने लगा। प्राकृतिक अधिकारों का विचार मूलतः सत्रहवी शताब्दी के इंग्लैण्ड में जांन लांक (1632-1704) ने प्रस्तुत किया था। लांक ने तर्क दिया कि जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों का मुख्य आधार है। इन्ही अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिक अपने राज्य का निर्माण करते हैं। यदि राज्य इन अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाता तो व्यक्ति को राज्य के विरोध का अधिकार मिल जाता है। इन विचारों की प्रेरणा से उन्नीसवी शताब्दी में नागरिकता को केवल कानूनी हैसियत का सूचक माने जाने लगा और व्यक्ति के अधिकारों की परिभाषा, 'राज्य के विरूद्ध अधिकारों' के रूप में दी जाने लगी। कुछ भी हो नकारात्मक अधिकारों की इस धारणा ने उदार लोकतंत्रीय समाजों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया और आगे चलकर इसी समाज में सकारात्मक अधिकारों की धारणा विकसित हुई जिसने नागरिकता के विचार को अपने तर्क संगत परिणाम तक पहुंचाया।

5.3.3 नागरिकता के विविध पक्षः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार

आज के युग में तात्विक नागरिकता के तीन महत्वपूर्ण पक्ष स्वीकार किए जाते है। इन्हें क्रमशः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की कोटि में रखा जाता है। टी॰एच॰ मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध कृति नागरिकता और सामाजिक वर्ग (1950) के अंतर्गत यह दिखाया है कि ब्रिटेन में किस तरह धीरे-धीरे इन अधिकरों का विकास हुआ है जिससे नागरिकता की संकल्पना अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंची है। यह बात याद रखने की है कि वहां सत्रहवी शताब्दी के अंत में गौरवमय क्रांति (1988) के साथ नागरिकता की संकल्पना की शुरूआत हुई। मार्शल ने यह दिखाया है कि अठारहवां शताब्दी के ब्रिटेन में नागरिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या नागरिक नागरिकता का विकास हुआ। उन्नसवी शताब्दी में वहां राजनीतिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या राजनीतिक नागरिकता स्थापित हुई। अंततः बीसवीं शताब्दी में वहां राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग के परिणामस्वरूप सामाजिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या सामाजिक नागरिकता का विकास हुआ। मार्शल ने लिखा है कि वहां

के न्यायालय नागरिकों के नागरिक अधिकारों की रक्षा करते है। प्रतिनिधि राजनीतिक संस्थाएं उनके राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करती है और सामाजिक सेवाएं तथा स्कूल उन्हें समुचित सामाजिक अधिकार प्रदान करते हैं।

मार्शल के अनुसार नागरिक अधिकारों में कानून के समक्ष समानता दैहिक स्वतंत्रता, भाषण या वाणी, विचार और आस्था की स्वतंत्रता, संपति रखने और अनुबंध करने के अधिकारों का विशेष स्थान है। नागरिक अधिकारों की सार्थकता के लिए यह जरूरी है कि ये अधिकार अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वर्गों को समानता या बराबरी के आधार पर प्राप्त होने चाहिए। दूसरे शब्दों में इन अधिकारों की व्यवस्था करते समय राज्य के नृजातीय प्रजातीय धार्मिक और भाषाई समूहों में से किसी के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं बरता जाना चाहिए। यदि किन्हीं समूहों के साथ विशेषतः अल्पसंसख्यक वर्गों के साथ इस मामले में भेदभाव बरता जाता है तो ये समूह इस भेदभाव के विरूद्ध नागरिक अधिकार आंदोलन चला सकते है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका में नागरिक अधिकार आंदोलन उन अधिकारों को लागू करने के लिए चलाए गए जो कानून में तो निहित थे परंतु व्यवहार के स्तर पर अश्वेत लोगों को ये अधिकार प्राप्त नहीं थे। उन्हें विशेष रूप से सार्वजनिक संपत्ति और सार्वजनिक स्थानों के मुक्त प्रयोग तथा रोजगार के समान अवसरों से वंचित रखा गया था। उनके लगातार संघर्ष और लंबे आंदोलन का परिणाम नागरिक के अधिनियम के रूप में सामने आया।

मार्शल के अनुसार सामाजिक अधिकारों से तात्पर्य है- निश्चित स्तर की आर्थिक और सामाजिक खुशहाली का अधिकार तथा सभ्यता और संस्कृति की धरोहर को दूसरों के साथ मिल जुलकर प्रयोग करने का अधिकार। लोकतंत्रीय प्रणालियों के अंतर्गत नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रायः कल्याणकारी राज्य की छत्रछाया में प्रदान किए जाते है। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के राज्य को प्रहरी राज्य की संज्ञा दी जाती थी क्योंकि उसका उद्देश्य नागरिकों की संपत्ति की रखवली करना था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 'शक्तिमूलक' राज्य अस्तित्व में आया जिसका मुख्य लक्ष्य दूसरे विश्व युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त करना था। इस शताब्दी के उत्तरार्ध से कुछ पहले ब्रिटेन में कल्याणकारी राज्य का उदय हुआ जो धीरे धीरे अन्य लोकतंत्रीय देशों में भी लोकप्रिय हो गयां इसका उद्देश्य सरकारी तंत्र को उन नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्यन में लगाना और उनके लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था करना था जो नागरिकों क सामूहिक सामाजिक हितों को बढ़ावा देती हों। बेवरिज रिपोर्ट (1942) के अनुसार इस राज्य का ध्येय पांच महा बुराइयां को अंत करना था। अभाव, अज्ञान, दरिद्रता, रोग और बेकारी।

अब यह माना जाने लगा कि भविष्य में जब खुले बाजार की अर्थ व्यवस्था के दुष्परिणाम लोगों के बस के बाहर हो जायेंगे-विशेषतः जब लोग बेरोजगारी बीमारी और बुढ़ापे की वजह से लाचार हो जाएंगे तब राज्य अर्थ व्यवथा में हस्तक्षेप करके प्रभावित लोगों के लिए आवश्यक सहायता का प्रबंध करेगा। यह बात महत्वपूर्ण है कि ब्रिटेन में नागरिकता के विविध पक्षों का विकास तर्कसंगत क्रम से हुआ और इस क्रम में वह अपने उत्कर्ष तक पहुंची। वहां नागरिक अधिकारों ने लोकतंत्र के पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया जिससे राजनीतिक अधिकारों की स्थापना हुई। राजनीतिक अधिकारों ने जनसाधारण का सार्वजनिक जीवन में भाग लेने और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करने का अवसर दिया। इससे सामाजिक अधिकारों का विकास हुआ और कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई। दूसरी और संयुक्त राज्य अमरीका में नागरिकता की संकल्पना नागरिक अधिकारों के आगे नहीं बढ़ पाई अतः वहां स्त्रियों और अश्वेतों ने नागरिक अधिकारों की प्रप्ति के लिए संघर्ष चलाया और इसमें सफलता प्राप्त की।

5.3.4 नागरिकता के सिद्धान्त

समकालीन राजनीतिक चर्चा के अंतर्गत नागरिकता के उपयुक्त आधार और विचारक्षेत्र के बारे में अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गये हैं। इनमें पांच सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उदारवादी सिद्धान्त, स्वेच्छातंत्रवादी सिद्धांत, समुदायवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धान्त और बहुलवादी सिद्धांत।

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता की बुनियाद नागरिक अधिकार है ये अधिकार समाज में समानता और सामाजिक न्याय स्थापित करके अपने तर्कसंगत परिणाम तक पहुंचते है। चूंकि यह सिद्धांत अधिकारों के विकास में विश्वास करता है इसीलिए इसे नागरिकता का विकासात्मक सिद्धांत भी कहा जाताहै। इस सिद्धांत का मुख्य प्रवक्ता टी०एच० मार्शल है। मार्शल ने अपनी महत्वपूर्ण कृति नागरिकता और सामाजिक वर्ग (1950) के अंतर्गत लिखा है कि नागरिकता विभिन्न व्यक्तियों के लिए समान अधिकार और कर्तव्य, स्वतंत्रताएं और प्रतिबंध, शक्तियां और उत्तरदायित्व निर्धारित करती है। इसके अंतर्गत ये व्यक्ति मिल जुलकर अपने साहचर्य की शर्तें तय करते है। नागरिकता का विचार समाज के वर्ग विभेद की विपरीत दिशा में कार्य करता है। सामाजिक वर्ग तो संपति के स्वामित्व, शिक्षा के स्तर और अर्थव्यवस्था के ढांचे के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों में विषमता को बढ़ावा देता है परंतु नागरिकता उन्हें समान हैसियत प्रदान करने को तत्पर होती है।

इस सिद्धांत के आलोचक यह तर्क देते है कि यह जरूरत से ज्यादा आशावादी है। जब सामाजिक अधिकारों की व्यवस्था के लिए सामाजिक संसाधनों का पुनर्वितरण किया जाता है तब समाज में कुछ लोगों पर कर लगाकर दूसरों को लाभ पहुंचाया जाताहै। समाज में सद्भावना और सुदृढ़ता कायम रखने के लिए यह जरूरी है कि कर देने वालों पर अनुचित बोझ न पड़े।

नागरिकता का स्वेच्छातंत्रवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता की स्थिति व्यक्तियों के स्वतंत्र चयन और अनुबंध का परिणाम है। यह बाजार सामाज के प्रतिरूप को नागरिक जीवन का उपयुक्त आधार मानता है। इस सिद्धांत का मुख्य प्रवक्ता रावर्ट नांजिक हैं। नॉजिक ने अपनी चर्चित कृति अराजकता राज्य और कल्पनालोक (1974) के अंतर्गत यह संकेत किया है कि लोग अपने मूल्यों मान्यताओ और अधिमान्यताओं की सिद्धि के लिए निजी गतिविधि बाजार विनिमय और स्वैच्छिक साहचर्य का सहारा लेते है। नागरिकता की जरूरता इसलिए पैदा होती है क्योंकि कुछ आवश्यक वस्तुए और सेवाएं इन तरीको से उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः उनके लिए सार्वजनिक व्यवस्था जरूरी हो जाती है। इस दृष्टि से नागरिक का अर्थ है सार्वजनिक वस्तुओं का विवेकशील उपभोक्ता । नॉजिक के अनुसार राज्य को एक विशाल उद्यम मानना चाहिए नागरिक उसके ग्राहक या सेवार्थी है।। मनुष्य अपनी संपति के अधिकार की रक्षा के लिए संरक्षक संस्थाओं की सेवाएं प्राप्त करते हैं। राज्य ऐसी संरक्षक संस्था है जो मुक्त प्रतियोगिता में सबसे आगे रहती है। अतः उसे निर्दिष्ट भू-भाग में बल प्रयोग का एकाधिकार प्राप्त हो जाता है।

इस सिद्धांत के आलोचक यह तर्क देते है कि मुक्त बाजार पर आधारित व्यक्तिवाद सामाजिक सुदृढ़ता के लिए पर्याप्त नहीं है। नागरिकता का यह प्रतिरूप समाज के भीतर स्वार्थों की भीषण लड़ाई और तीव्र वाद विवाद को बढ़ावा देगा। उदाहरण के लिए नागरिकता की यह संकल्पना लागू कर देने पर ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे जो लोग

सरकारी अस्पताल से इलाज नहीं कराते या अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में नहीं भेजते वे इन अस्पतालों और स्कूलों का खर्च उठाने के लिए कर क्यों दें जिनके पास विशाल संपत्ति नहीं है वे इतने बड़े पुलिस बल के रख-रखाव का खर्च उठाने में सहयोग क्यो दें या फिर जिन्हें अपने देश से कोई लगाव नहीं है अर्थात जो लोग अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल पर कहीं भी जाकर ऊंची आय अर्जित कर सकते हैं वे अपने देश की विशाल सेनाओं के रख रखाव के खर्च में अपना हिस्सा क्यों दें।

इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह भी कहा जाएगा कि लोगो को अपनी आकस्मिक जरूरतों जैसे कि अग्नि कांड, बीमारी, दुर्घटना, चोरी, डकैती इत्यादि के समय सहायता के लिए निजी बीमा कंपनियों की सेवाएं प्राप्त करनी चाहिए। इस तरह धीरे-धीरे सरकार की जरूरत ही खत्म हो जाती है और नागरिकता का विचार निरर्थक हो जाएगा।

नागरिकता का समुदायवादी सिद्धांत

समुदायवादी सिद्धांत के विपरीत नागरिकता का समुदायवादी या गणतंत्रवादी सिद्धांत व्यक्ति और समुदाय के सुदृढ़ बंधन पर बल देता है। इसके अनुसार नागरिक ऐसा व्यक्ति है जो राजनीतिक वाद विवाद और निर्णय प्रक्रिया में भाग लेकर अपने समाज का भावी रूप निर्धारित करने में सक्रिय भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में नागरिकता का मुख्य लक्षण नागरिक सहभागिता है। इस सिद्धांत के प्रवर्तकों में हन्ना आरेंट, बेंजामिन बार्बर और माइकेल वाल्जर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस सिद्धांत की मुख्य मान्यता यह है कि नागरिक जिस समुदाय का सदस्य है उसके साथ वह अपना तादात्म्य स्थापित करें और उसके राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग ले तभी वह सामान्य हित की सिद्धि में योग दे सकता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति अपने आपकों समुदाय की संस्कृति परंपराओ मान्यताओं और भावनाओं के साथ एकाकार करके ही सच्चे अर्थों में उसका नागरिक बनता है।

इस सिद्धांत के आलाचक यह तर्क देते है कि नागरिकता का यह प्रतिरूप केवल ऐसे छोटे आकार के एकसार समुदाय के लिए उपयुक्त है जैसा चौथी शताब्दी ई॰पू॰ एथेंस या पंद्रहवी शताब्दी के फ्लोरेंस में प्रचलित था। रूसों ने अपनी विख्यात कृति सामाजिक अनुबंध के अंतर्गत ऐसे समुदाय को लक्ष्य करके ही सामान्य इच्छा के आविर्भाव की कल्पना की थी।

नागरिकता का मार्क्सवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता से जुड़े हुए अधिकार वर्ग संघर्ष की देन है अर्थात वर्ग संघर्ष में कोई वर्ग अपने विरोधी वर्ग का दमन करके जो अधिकार प्राप्त करता है, वही नागरिकता की बुनियाद है। इस सिद्धांत का प्रमुख व्याख्याकार एंथनी गिडेंस है। गिडेंस ने अपनी दो प्रमुख कृतियां ऐतिहासिक भौतिकवाद की समकालीन मीमांसा और सामाजिक सिद्धांत रूपरेखा और मीमांसा के अंतर्गत अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए मार्शल के विचारों का खंडन किया है।

गिडंेस के विचार से नागरिकता और आधुनिक लोकतंत्र का विकास सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू हुआ जब राज्य की प्रभुसत्ता और प्रशासनिक ढांचे का विस्तार हो गया। इस तरह राज्य अपने नागरिकों के बारे में सूचना एकत्र करने उनकी गतिविधियों का हिसाब रखने और उनपर निगरानी रखने में समर्थ हो गया। परंतु वह केवल बल प्रयोग के सहारे उन पर नियंत्रण रखने में समर्थ नहीं रहा, ऐसी हालत में शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए

शासन और शासित एक दूसरे पर आश्रित हो गए और ऐसे अवसर पैदा हो गए कि शासित स्वयं शासकों पर अपना प्रभाव डाल सकें।

नागरिकता का बहुलवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता का विकास एक जटिल और बहु आयामी प्रक्रिया है। इसे किसी एक कारण के साथ नहीं जोड़ा जा सकता बल्कि इसकी उपयुक्त व्याख्या के लिए इसके भिन्न-भिन्न कारणों की भूमिका पर ध्यान देना चाहिए।

डेविड हैल्ड ने राजनीति-सिद्धान्त और आधुनिक राज्य के अंतर्गत लिखा है कि प्राचीन काल से आज तक नागरिकता का यह अर्थ लगाया गया है कि नागरिक को अपने समुदाय के विरुद्ध कुछ अधिकार प्राप्त होंगे और समुदाय के प्रति उसके कुछ कर्तव्य होंगे। ये अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। दूसरे शब्दों में वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक व्यक्ति के अधिकार दूसरों के कर्तव्य बन जाते है। उसके कर्तव्य दूसरों के अधिकार बन जाते हैं नागरिकता का सार तत्व समुदाय के जीवन में व्यक्ति की सहभागिता है। इसे केवल वर्ग संघर्ष की देन मानना भ्रांमक होगा। इतिहास के पन्ने पलट कर देखें तो बहुत सारे लोगों को लिंग, धर्म, संपत्ति, शिक्षा, व्यवसाय, आयु इत्यादि के आधार पर नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। आज के युग में ऐसे भेदभाव के विरूद्ध अनेक आंदोलन चलाए गए है।

संक्षेप में नागरिकता का बहुलवादी सिद्धांत उन सब प्रवृत्तियों और आंदोलनों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। जो समाज के वंचित वर्गों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने की मांग उठाते है। चूंकि सामाजिक चेतना के विकास के साथ-साथ ये आंदोलन निरंतर नई-नई दिशाओं में फैल रहे है, इसलिए नागरिकता का विश्लेषण निरंतर अनुसंधान का विषय है उसे किसी एक बने बनाए ढांचे में ढालकर नहीं देखा जा सकता।

5.3.5 नागरिकता के सिद्धांत की समालोचनाएं

समकालीन विश्व में कई ओर से यह आवाज उठाई जा रही है कि नागरिकता का प्रचलित सिद्धांत समाज के सब हिस्सों को उपयुक्त अधिकार प्रदान नहीं करता। इस दृष्टि से नारीवाद समालोचना और उपाश्रितवर्गीय समालोचना, दो तरह की समालोचनाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

नारीवादी समालोचना

नागरिकता के नारीवादी समालोचक यह तर्क देते हैं कि समाज में स्त्रियां को प्रकट रूप से पूर्ण नागरिकता प्राप्त हो जाने पर भी नागरिक जीवन में वे पराधीन बनी रहती है। 1970 के दशक के समाज और राजनीति में स्त्रियों की स्थिति विशेष चर्चा का विषय बन गई है। इससे पहले प्रायः यह माना जाता था कि कानून की दृष्टि से स्त्री पुरुष की समानता स्थापित हो जाने के बाद स्त्रियों के लिए शिकायत का कोई मुद्दा नहीं रह गया है। स्त्रियों को मताधिकार मिल जाने के बाद मतदान व्यवहार के जो अध्ययन प्रस्तुत किए गए उनसे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियां मतदान मं कम हिस्सा लेती है। इसकी यह व्याख्या दी गई कि स्त्रियों को निजी और घरेलू मामलों

में ज्यादा दिलचस्पी होती है उन्हें राजनीति और सार्वजनिक मामलों में बहुत कम दिलचस्पी रहती है और उसके लिए उन्हें पर्याप्त समय भी नहीं मिलता।

कुछ दशक पहले जब परिवार छोटे होने लगे और ज्यादा से ज्यादा स्त्रियां घर से बाहर के काम करने लगी तब इस व्याख्या पर लोगों को उतना विश्वास नहीं रहा। फिर यह भी देखा गया कि मतदान में हिस्सा लेने वाली स्त्रियों का अनुपात लगातार बढ़ रहा है परंतु राजनीतिक सत्ता के स्तरों पर उनका हिस्सा बहुत मामूली है। विश्वभर के निर्वाचक मंडलों में स्त्रियों की संख्या पचास प्रतिशत से कम तो नहीं है परंतु राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्तर पर उनका अनुपात बहुत कम है।

अतः नारीवादी यह मांग करते हैं कि जब तक सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की समान सहभागिता की शर्त पूरी नहीं की जाती तब तक नागरिकता की संकल्पना को अपने तर्कसंगत परिणाम तक नहीं पहुंचाया जा सकता। यह बात ध्यान देने की है कि भारत में पचायतों के स्तर पर स्त्रियों के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित रखकर इस दिशा में पहल की गई है। इससे स्त्रियों को आधार स्तर पर राजनीति में आने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। धीरे-धीरे इस स्तर पर उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ावा जा सकता है और विधान सभाओं तथा संसद में भी उनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जा सकती है।

उपाश्रितवर्गीय समालोचना

नागरिकता के सिद्धान्त को उपाश्रितवर्गीय समालोचना का तात्पर्य यह है कि केवल कानूनी या औपचारिक स्तर पर सब नागरिकों के समान अधिकारो की व्यवस्था कर देने से समाज के उपाश्रित वर्गों के स्थिति को सुधारने में कोई सहायता नहीं मिलती। उपाश्रितवर्ग का मुख्य लक्षण सामाजिक पराधीनता है। नागरिकता की उपाश्रितवर्गीय समालोचना के संदर्भ में उपाश्रितवर्ग की परिभाषा को और श्री विस्तृत करना जरूरी है। संक्षेप में समाज के जो भी समूह या वर्ग घोर दरिद्रता और तरह-तरह की विवशता के कारण अमानवीय जीवन जी रहे है जिनके जीवन में आशा की कोई किरण नहीं रह गई है और जिनके उद्धार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है उन सबको उपाश्रितवर्ग की श्रेणी में रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में ये समाज उपेक्षित वर्ग है। कानूनी तौर पर भारत में बंधुआ मजदूरी समाप्त हो चुकी है। परंतु कहीं कहीं अब भी यह प्रथा चल रही है। बाल मजदूरी भी कानूनी तौर पर बंद हो चुकी है। परंतु यह समाज में दिखाई देती है। गांवों में बहुत छोटे किसान और खेतिहर मजदूर दो जून रोटी के लिए तरसते हैं कलकता के कूड़ा मजदूर जिनमें बच्चों की संख्या बहुतायत है- कूड़े मे से कबाड़ी का समान चुन चुनकर रोटी की जुगाड़ करते है। दिहाड़ी मजदूर, बेबस, लाचार, बीमार लोग कानून की दृष्टि से इस देश के माननीय नागरिक है। परंतु यथार्थ जीवन में ये मनुष्य भी नहीं है। जब तक नागरिकता की चादर से ये धब्बे नहीं मिटाए जाते अर्थात जब तक देश के बेबस और लाचार लोगों को इंसानों की तरह जीने के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्रदान नहीं की जाती तब तक देश में पूर्ण नागरिकता के विकास पर गर्व करना व्यर्थ ही नहीं भ्रामक भी होगा।

5.3.6 भारत में नागरिकता के संवैधानिक उपबंध

भारत का संविधान परिसंघात्मक व्यवस्था केंद्र और राज्य के मध्य करती है किन्तु एकल नागरिक व्यवस्था है ।राज्यों की कोई अलग नागरिकता की व्यवस्था नहीं है । भारतीय संविधान के भाग 2 में अनुच्छेद 5 से 11 तक में नागरिकता के बारे में चर्चा की गई है। इस संबंध में इसमें स्थायी और विस्तृत उपबंध नहीं है। यह सिर्फ उन लोगो की पहचान करता है। जो संविधान होने के समय अर्थात 26 जनवरी 1950 भारत के नागरिक बनें। इसमें न तो इनके अधिग्रहण एवं न ही नागरिकता की हानि की चर्चा की गई है। यह संसद को इस बात का अधिकार देता है कि वह नागरिकता से संबंधित मामलों की व्यवस्था करने के लिए कानून बनाए। इसी प्रकार संसद ने नागरिकता अधिनियम 1955 को लागू किया गया। जिसका 1986,1992 2003 और 2005 में संशोधित किया गया।

संविधान निर्माण के उपरांत (26 जनवरी 1950) संविधान के अनुसार चार श्रेणियों के लोग भारत के नागरिक बने-

1.एक व्यक्ति जो भारत का मूल निवासी है। और तीन में से कोई एक शर्त पूरी करता है। ये शर्तें हैं यदि उसका जन्म भारत में हुआ हो या उसके माता पिता में से किसी एक का जन्म भारत में हुआ हो या संविधान लागू होने के पांच वर्ष पूर्व से भारत में रह रहा है। (अनुच्छेद 5) । इन तीनों शर्तों में किसी एक को होना चाहिए ।

2.एक व्यक्ति जो पाकिस्तान से भारत आया हो और यदि उसके माता पिता या दादा-दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हो, वह भारत का नागरिक बन सकता है। (अनुच्छेद 6)

3.एक व्यक्ति जो 1 मार्च 1947 के बाद भारत जो 1 मार्च 1947 के बाद भारत से पाकिस्तान स्थानांतरित हो गया हो। लेकिन बाद में फिर भारत में पुनर्वास के लिए लौट आयें तो वह भारत का नागरिक बन सकता है। उसे पंजीकरण प्रार्थना पत्र के बाद छह माह तक रहना होगा (अनुच्छेद 7)

4.एक व्यक्ति जिसके माता पिता या दादा दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हों। लेकिन वह भारत के बाहर रह रहा हो। फिर भी वह भारत का नागरिक बन सकता है। यदि उसने भारत के नागरिक के रूप में पंजीकरण कुटनीतिज्ञ तरीके या पार्षदीय प्रतिनिधि के रूप में आवेदन किया हो। यह व्यवस्था भारत के बाहर रहने वाले भारतीयों के लिए बनाई गई है ताकि वे भारत की नागरिकता ग्रहण कर सके। (अनुच्छेद 8)

नागरिकता सम्बन्धी अन्य संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार है-

1.वह भारत का नागरिक नहीं होगा या भारत का नागरिक नहीं माना जायेगा जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेगा। (अनुच्छेद 9)

2.प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का है समझा जाता हैयदि संसद इस प्रकार के किसी विधान का निर्माण करे। (अनुच्छेद 10)

3.संसद को यह अधिकार है कि वह नागरिकता के अर्जन एवं समाप्ति से सम्बन्धित विषयों के संबंध में विधि बना सकती है। (अनुच्छेद 11)

5.3.7 नागरिकता अधिनियम 1955

नागरिकता अधिनियम (1955) संविधान लागू होने के बाद अर्जन एवं समाप्ति के बारे में उपबंध करता है इस अधिनियम को अब तक पाँच बार संशोधित किया गया है। ये संशोधन इस प्रकार है-

1.नागरिकता संशोधन अधिनियम 1986।

2.नागरिकता संशोधन अधिनियम 1992।

3.नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003।

4.नागरिकता संशोधन अधिनियम 2005।

5. नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019।

उपरोक्त संशोधन अधिनियम द्वारा समय समय पर भारतीय नागरिकों के नागरिकता सम्बंधी प्राविधानों में संशोधन होता रहा है और नागरिकों को कुछ और अधिकार एवं सहूलियतें मिली जैसे-

1.भारतीय नागरिकों की संतान भारत से बाहर जन्म लेने पर भी भारतीय नागरिक होगी, किन्तु 1992 से पहले सिर्फ पिता के भारतीय होने पर नागरिकता मिलती थी।

2.भारत में 5 साल रहने के बाद कोई भी नागरिकता का आवेदन कर सकता है।

3. 30 जून 1987 के पहले भारत में जन्मा हर व्यक्ति भारत का नागरिक होता था किन्तु 1 जुलाई 1987 से भारत में जन्मा तथा माता-पिता में से किसी एक का भारतीय होना नागरिकता के लिए आवश्यक हो गया।

5.3.8 नागरिकता का अर्जन

नागरिकता अधिनियम 1955 नागरिक प्राप्त करने की पांच शर्तें बताता है- (1) जन्म (2) वंशानुगत (3) पंजीकरण (4) देशीकरण (5) किसी क्षेत्र के भारत में विलय से।

1. जन्म द्वारा- प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत में 26 जनवरी 1950 को या उसके पश्चात जन्म हुआ है जन्म से भारत का नागरिक है। भारत में पदस्थ विदेशी राजनयिक एवं शत्रु देश के बच्चों को भारत की नागरिकता अर्जन करने का अधिकार नहीं है।

2.वंश के आधार पर- कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी 1950 को या उसके बाद परन्तु 10 दिसम्बर 1992 से पूर्व भारत के बाहर हुआ हो वह वंश क आधार पर भारत का नागरिक बन सकता है यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक हो।

3.पंजीकरण के द्वाराः- कोई व्यक्ति जो (अवैध प्रवासी न हो) कुछ शर्ते पूरी करके भारत की नागरिकता अर्जित कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अनेक प्रवर्गों के हो सकते हैं। उदाहरण वे व्यक्ति जिनका विवाह भारत के नागरिकों से हुआ है या वे व्यक्ति जो भारतीय मूल के है।

4.देशीकरण द्वाराः- जब किसी विदेशी का देशीकरण के लिए आवेदन भारत सरकार द्वारा मंजूर कर लिया जाता है तो वह भारत का नागरिक बन जाता है। नागरिकता संशोधन अधिनियन 2019 के द्वारा बंग्लादेश , पाकिस्तान और अफगानिस्तान से भारत आने वाले हिन्दू ,सिख बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदाय (धर्म) वाले लोगों ,जो 31 दिसंबर 2014 तक या पूर्व में भारत में वहाँ की धार्मिक प्रताड़ना से बचने के लिए भारत में रह रहे हैं यह संशोधित विधि 2019 , 10 जनवरी 2020 से प्रभावित हो गई ।इस नए प्रावधान के अनुसार जो प्रवासी भारत में अवैध रूप से रहते थे उन्हें नागरिकता हेतु आवेदन का अधिकार प्रदान करते हुए पूर्व में प्रावधानित 11 साल की अवधि को कम करके पाँच वर्ष कर दिया गया ।उक्त संशोधित धारा 6(b) में पंजीकरण और देशीकरण द्वारा दोनों आधार पर नागरिकता प्राप्ति के तत्वों का समावेश किया गया ।

5.राज्य क्षेत्र के सम्मिलित किए जाने परः- किसी विदेशी क्षेत्र द्वारा भारत का हिस्सा बनने पर भारत सरकार उस क्षेत्र से संबंधित विशेष व्यक्तियों को भारत का नागरिक घोषित करती है। ऐसे व्यक्ति उल्लिखित तारीख से भारत के नागरिक होते हैं। उदाहरण के लिए जब पांडिचेरी भारत का हिस्सा बना तो भारत सरकार ने नागरिकता (पांडिचेरी) आदेश 1962 जारी किया। यह आदेश नागरिकता अधिनियम 1955 के तहत जारी किया गया।

5.3.9 नागरिकता की समाप्ति

नागरिकता अधिनियम 1955 में अधिनियम या संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्राप्त नागरिकता खोने के तीन कारण बताए गए हैं त्यागना, वर्खास्तगी या वंचित किया जाना।

1.स्वैच्छिक त्याग- कोई भी भारत का नागरिक जो वयस्क है और जिसमे विधिक क्षमता है घोषणा करके नागरिकता का त्याग कर सकता है। यह घोषणा वही व्यक्ति कर सकता है जो भारत से भिन्न किसी देश का नागरिक या राष्ट्रिक है।

2.बर्खास्तगी के द्वारा- भारत का कोई नागरिक जिसने देशीकरण या रजिस्ट्रीकरण आदि द्वारा स्वेच्छा से नागरिकता अर्जित की थी और जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता अर्जित कर लेता है। भारत का नही रह जाता।

3.वंचित करना-केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय नागरिक को आवश्यक रूप से बर्खास्त करना होगा यदि-

I. यदि नागरिकता फर्जी तरीके से प्राप्त की गयी हो।

II. यदि नागरिक ने संविधान के प्रति अनादर जताया हो।

III. यदि नागरिक ने युद्ध के दौरान शत्रु के साथ गैरकानूनी रूप से संबंध स्थापित किया हो या उसे कोई विरोधी सूचना दी हो।

IV. पंजीकरण या प्राकृतिक नागरिकता के पांच वर्ष के दौरान नागरिक को किसी देश में दो वर्ष की कैद हुई हो।

V. नागरिक सामान्य रूप से भारत के बाहर सात वर्षों से रह रहा हो।

यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी राजपद्धति (केन्द्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात भारतीय नागरिकता। यहां राज्यों के लिए कोई पृथक नागरिकता की नहीं है। अन्य संघीय राज्यों जैसे-अमेरिका एवं स्विटजरलैण्ड में दोहरी नागरिकता व्यवस्था को अपनाया गया है।

अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति न केवल अमेरिका का नागरिक है वरन उस राज्य विशेष का भी नागरिक है जहां वह रहता है। इस तरह उसे दोहरी नागरिकता प्राप्त है और इसी संदर्भ में उसे राष्ट्रीय सरकार एवं राज्य सरकार के दोहरे अधिकार प्राप्त है। यह व्यवस्था भेदभाव की समस्या पैदा कर सकती है। यह भेदभाव मताधिकार, सार्वजनिक पदों, व्यवसाय आदि को लेकर हो सकता है। ऐसी समस्या को दूर करने के लिए ही भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1.भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में नागरिकता का वर्णन है?

(।) अनुच्छेद 6 से 11 तक (ठ) अनुच्छेद 5 से 11 तक

(ब्) अनुच्छेद 6 से 12 तक (क्) अनुच्छेद 5 से 12 तक

2.नागरिकता सम्बंधी प्रावधान भारतीय संविधान के किस भाग के अन्तर्गत किया गया है?

(।) भाग पांच (ठ) भाग एक (ब्) भाग दो (क्) भाग तीन

3.एकल नागरिकता की व्यवस्था को किस देश ने अपनाया है?

(।) अमेरिका (ठ) स्विटरजर लैण्ड (ब्) यू०के० (क्) भारत

4.नागरिकता पर कानून बनाने का अधिकार किसे है?

(।) राष्ट्रपति (ठ) प्रधानमंत्री (ब्) संसद (क्) लोकसभा अध्यक्ष

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपने नागरिकता का अर्थ महत्व एवं नागरिकता की संकल्पना तथा नागरिकता के विविध पक्ष, नागरिकता के सिद्धांत और नागरिकता का ऐतिहासिक विकास आदि का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में नागरिकता का अर्जन एवं समाप्ति कैसे होती है तथा भारतीय संविधान में नागरिकता के विभिन्न उपबन्धों का अध्ययन बहुत ही सार गर्भित ढंग से किया। नागरिक के कर्तव्य भावना का बोध नागरिकता से प्राप्त होता है। यदि व्यक्ति को किसी देश की नागरिकता दे दी जाय और उस व्यक्ति को उस देश की राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने का अवसर न दिया एवं उसके सारे अधिकार राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार न दिये जाय तो नागरिकता का कोई मतलब नहीं होगा। अर्थात नागरिकता हमें यह बोध कराता

है कि व्यक्ति को सभी प्रकार के अधिकार मिलने चाहिए। जैसा कि हम जानते है कि प्राचीन काल में व्यक्ति को सारे अधिकार नहीं मिले थे, धनवान एवं निर्धन में भेद बरता जाता था। सभी लोग राज्य के सदस्य नहीं माने जाते थे।

लेकिन आज के लोक तंत्रीय राज्य के सभी स्थायी सदस्य वहां के नागरिक माने जाते है। यूनानी नगर राज्य में मात्र 10 प्रतिशत लोग ही राज्य के पूर्ण नागरिक माने जाते थे। दास, स्त्रियां और अन्य देशी को कोई नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। अरस्तू नागरिकता को शासक वर्ग का विशेषाधिकार समझता था। कुछ भी हो, प्राचीन यूनानी चिंतन में शासक वर्ग के इस विशेषाधिकार को कर्तव्य का रूप देकर इसके पालन पर बल दिया गया ताकि राजनीतिक समुदाय सब लोगों को उत्तम जीवन प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो।

यूनानी नगर राज्यों के पतन के बाद रोमन सम्राज्य के युग में नागरिकता की नई परिभाषा विकसित की गई। मध्युगीन यूरोप में जब राजनीतिक सत्ता पर धार्मिक सत्ता का वचस्व स्थापित हो गया तब भी नागरिकता का अस्तित्व मिट सा गया। 16वीं शताब्दी में पुर्नजागरण काल में नागरिकता का विचार फिर से मुखर हुआ। इस प्रकार गौरवमय क्रांति ने मानव एवं नागरिक के अधिकारों की घोषणा के साथ नागरिकता का विचार अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। 19वीं सदीं आते-आते उदारवाद के उत्कर्ष के साथ बाजार सम्बन्धों का विकास हुआ जिसने नागरिकता की नई अवधारणा को विकसित किया। इस प्रकार 21वीं सदी में प्रत्येक देश में नागरिकता अपनेपूर्ण अधिकारों के साथ प्रवेश कर चुका है।

प्रत्येक देश में व्यक्ति के अधिकारों के साथ एवं स्वतंत्रताओं में वृद्धि के साथ नागरिकता अपने पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर चुकी है। नागरिक अधिकारों में कानून के समक्ष समानता, दैनिक स्वतंत्रता, भाषण, विचार और आस्था की स्वतंत्रता, संघ बनाने और सभा करने की स्वतंत्रता, मुक्त विचरण की स्वतंत्रता, अनुबंध की स्वतंत्रता और सम्पति का अधिकार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

इस सब के बावजूद अभी भी समाज में जो भी वर्ग घोर दरिद्रता और तरह-तरह की विवशता के कारण अमानवीय जीवन जी रहे है जिनके जीवन में आशा की कोई किरण नहीं रह गई है और जिनके उद्धार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इन उपेक्षित वर्गों की संख्या बहुत विशाल है।

कानूनी तौर पर भारत में बंधुआ मजदूरी और बाल मजदूरी समाप्त हो चुकी है। परंतु कहीं-कहीं अब भी यह प्रथा चली आ रही है। गांव में खेतिहर मजदूर छोटे किसान दो जून की रोटी के लिए तरसते है, बहुतायत में बच्चे कूड़े में से सामान चुन-चुनकर रोटी की जुगाड़ करते है। फुटपाथों पर जिंदगी गुजार देने वाले दिहाड़ी मजदूर और भी न जाने कितनी तरह के बेवस लाचार बीमार लोग कानून की दृष्टि से इस देश के माननीय नागरिक है। परन्तु यथार्थ जीवन में मनुष्य भी नहीं है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कानूनी जामा पहना देने से कुछ होने वाला नहीं है जब तक कि देश के बेबस लाचार लोगों को इंसानों की तरह जीने के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्रदान नहीं की जाती तब तक देश में पूर्ण नागरिकता के विकास पर गर्व करना व्यर्थ ही नहीं, भ्रामक भी होगा।

5.5 शब्दावली

1. अधिनियम- .कानून

2. उपबंध- नियम, जो नागरिकां के लिए बनाये गये है।

3. संसद- राज्य सभा ,लोकसभा , राष्ट्रपति तीनों के संयुक्त नाम को संसद कहते है।

4. अर्जन- प्राप्त करना।

5. उपाश्रितवर्ग-निम्न श्रेणी का व्यक्ति

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ठ 2. ब , 3. ब , 4. ब

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गावा, ओ॰पी॰ (2004) राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, शिवानी प्रकाशन दिल्ली।

2. शमार्, डॉ॰ प्रभुदत्त (2000) पाश्चात् राजनीतिक विचारों का इतिहास, कालेज बुक डिपो, जयपुर

3. लक्ष्मीकांत, एम॰ (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

4. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी॰एच॰ आई॰ लार्निंग, नई दिल्ली।

5. बसु, डी॰डी॰ (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ॰ पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ॰ वीरकेश्वर प्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नागरिकता का अर्थ बताते हुए इसके ऐतिहासिक विकास पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत कीजिए?

2. भारतीय नागरिकता के अर्जन एवं समाप्ति की विधियों का वर्णन कीजिए?

इकाई 6 : मूल अधिकार और मूल कर्तव्य

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मौलिक अधिकार

6.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

6.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

6.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद 19 से 22

6.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद25-28

6.3.6 सांस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :अनुच्छेद29-30

6.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

6.4 मूल कर्तव्य

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.10 निबन्धात्मकप्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई 6 में हम छः मौलिक अधिकार का क्रमशः विस्तृत अध्ययन करेगें तथा मूल कर्त्तव्यों का अध्ययन करेगें भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकारों की व्यवस्था करने के पीछे संविधान निर्माताओं की धारणा थी कि स्वतन्त्र देश के नागरिक के रूप में भारतवासी अपना जीवन यापन कर सकें।

इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि मूल अधिकार के उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाना भी मूल अधिकार है। इसी लिए डॉ0 अम्बेडकर इस अधिकार को संविधान की आत्मा कहा है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से हम जान सकेगें कि -

1) मौलिक अधिकार कितने है।
2) ये हमारे लिए मूलभूत है और क्यों है।
3) साथ ही यह भी जान सकेगें कि किन परिस्थितियों में मूल अधिकार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते है।
4) यह जान सकेगें कि मौलिक कर्त्तव्य क्या है और इसे क्यों अपनाया गया और कहाँ से अनुसरण किया गया।

6.3 मौलिक अधिकार

''अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ है जिनके अभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता''।

मौलिक अधिकार राज्य के विरूद्ध व्यक्ति के अधिकार है ये राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते है मौलिक अधिकारों के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मौलिक अधिकारों को नागरिक अधिकार के रूप में विश्व में सर्व प्रथम ब्रिटेन में दिया गया। इसे सन 1215 में वहाँ के सम्राट सर जान द्वितीय ने दिया ,जिसे मैग्नाकार्टा कहा जाता है। भारत ने भी अपने मौलिक अधिकार को भारत का मैग्नाकार्टा बताया।

1689 में सम्राट ने कुछ और अधिकार प्रदान किया जिसे वहाँ का विल ऑफ राइट्स कहा गया। अमेरिका ने भी अपने मौलिक अधिकार को अमेरिका का विल ऑफ राइट्स कहा।

चूंकि मौलिक अधिकार लिखित संविधान के अंग होते है और ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के कारण मौलिक अधिकार उस रूप में नहीं है जैसे भारत व अमेरिका को माना जाता है।

1787 में लिखे गए और 1789 से लागू हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के मूल संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं था यह संविधान लागू होने के दो वर्ष बाद 1791 में प्रथम दस संविधान संशोधनके द्वारा अमेरिका में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया। अमेरिका में मौलिक अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रुप में परिभाषित है। प्राकृतिक अधिकार के अर्न्तगत वे सभी अधिकार आ जाते हैंजो कि व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय प्राकृतिक या नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाकर मौलिक अधिकारों को घटा-बढ़ा सकता है। इसलिए अमेरिका की न्यायपलिका विश्व की सबसे शक्तिशाली न्यायपालिका के नाम से जानी जाती है।

भारतीय संविधान के अनु0 12 से लेकर 35 तक में मौलिक अधिकारों का व्यापक विश्लेशण व विवेचन किया गया है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 12 राज्य को परिभाषित करता है। अनु 13 में मौलिक अधिकार की प्रकृति बतायी गयी है। अनु0 33 व 34 में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है। अनु0 35 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनु0 14 से लेकर अनु0 32 तक, जिसमें अनु0 31को छोड़कर और 21(क) को जोड़कर अर्थात कुल 19 अनुच्छेदों के द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रुप में परिभाषित है अतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों, दोनों को प्रदान किया गया हैं लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रुप में परिभाषित हैंअतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती हैजो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराए जा सकते है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में उच्च एवं उच्चतम् न्यायालय दोनों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत में राजनितिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। मौलिक अधिकार न तो निरंकुश हैंऔर न असीमित प्रत्येक अधिकारों पर विभिन्न आधारों पर युक्त-युक्त निर्बन्धन लगाया गया है। कुछ मौलिक अधिकारों को आपातकाल में राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, और संसद कानून बनाकर उसे स्थगित कर सकती है।

मूल संविधान में कुल सात मौलिक अधिकारों का समावेश था लेकिन 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाकर कानूनी अधिकार बना दिया गया और इसे अनु0 300(क) में रखा गया हैऔर कहा गया हैकि संसद विधि बनाकर नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर सकती हैलेकिन इसके लिए सरकार को उचित मुआवजा देना होगा।

6.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

वर्तमान में केवल 6 मौलिक अधिकार ही है जो कि निम्नलिखित हैः-

1.समानता का अधिकार	अनु0 14 - 18
2.स्वतन्त्रता का अधिकार	अनु0 19-22
3.शोषण के विरूद्ध अधिकार	अनु0 23- 24
4.धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार	अनु0 25-28
5.संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार	अनु0 29-30
6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार	अनु0 32

मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य राज्य और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है।

अनुच्छेद12: इस अनु0 में राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है इसमें कहा गया है कि यहाँ राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार संघ विधानमण्डल राज्यों की सरकारें राज्यों के विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र में भारत सरकार के अधीन सभी स्थानीय एवं अन्य प्रधिकारी (शक्ति वैधता) शामिल है। यहाँ स्थानीय के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, जिला बोर्ड, पंचायती राज्य व जिला परिषद आदि आते हैं तथा प्राधिकारी के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम, लोक सेवा आयोग, विश्वविद्यालय, रेलवे, बैंक, आदि सभी शामिल है। कौन राज्य के अन्तर्गत आता हैंऔर

कौन नहीं आता इसे न्यायपालिका तय करतीहैजब कोई व्यक्ति मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण में जाता हैतो न्यायालय स्पष्ट करता है कि उसे राज्य माना जाए या न माना जाए। न्यायपालिका ने वर्तमान में वैष्णों देवी के मंदिर और अमरनाथ की गुफा को भी राज्य की संज्ञा प्रदान कि है।उपर्युक्त सभी के विरूद्ध व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13: इससे मौलिक अधिकार के प्रकृति और स्वरूप की विवेचना की गयी है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 13(1) संविधान लागू होने के पूर्व में बनायी गयी विधियाँ यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैंतो वे उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगीं।

अनु0 13(2) संविधान लागू होने के बाद भी राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हो यदि राज्य ऐसी कोई विधि बनाएगा तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13(3) यहाँ विधि शब्द के अन्र्तगत कानून, उपकानून, नियम, उपनियम, आदेश, अध्यादेश, संविदा, समझौता, संन्धि, करार आदि सभी शामिल है।

इस अनु0 में निम्नलिखित दो सिद्धान्त है:-

1.पृथक्करण का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करता हैतो केवल वही भाग शून्य घोषित होगा, पूरा कानून नहीं लेकिन उस भाग के निकाल देने से पूरे कानून का कोई अर्थ नहीं रह जाता तो पूरा कानून ही शून्य घोषित हो जाएगा।

2.आच्छादन का सिद्धान्त

यदि पूर्व में बनायी गयी विधियां मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैंतो वे नष्ट नहीं हो जाती बल्कि उन पर मौलिक अधिकारों की छाया आ जाती हैयदि संशोधनकरके उल्लंघन तक वाली विधियां ठीक कर ली जाएं तो वे पुनः जीवित हो जाती है। इसे चन्द्र ग्रहण का सिद्धान्त भी कहते है।

अनु0 13 के अन्तर्गत नयायपालिका को मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है।

6.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

आधुनिक युग में समानता फ्रांसीसी क्रांन्ति की देन है। भारतीय संविधान के अनु0 14 से 18 तक में समानता के विभिन्न रूपों कानूनी समानता,सामाजिक समानता, अवसर की समानता आदि का उल्लेख है।

अनुच्छेद 14: भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। इसमें निम्नलिखित दो बाते है -

1) विधि के समक्ष समता यह ब्रिटिश संविधान से गृहित है यह कानूनी समानता का नकारात्मक दृष्टिकोण हैंइससे निम्न 3 अर्थ निकलता है।

i.देश में कानून का राज

ii.देश में सभी व्यक्ति चाहे वे जिस भी जाति, धर्म व भाषा के हों, एक सामान्य

कानून के अधीन है।

iii.कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है।

2) विधियों के समान संरक्षण यह अमेरिकी संविधान से गृहीत है। इसका अर्थ यह है कि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा क्योंकि समानता का अर्थ सबकी समानता न होकर समानों में समानता है। अर्थात एक ही प्रकार के योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के साथ जाति, धर्म भाषा व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए। भारतीय संविधान विधायिनी वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता हैजो कि

अनु0 14 का उल्लंघन नहीं करता है। विधायिनी वर्गीकरण का अर्थ है यदि एक व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार अन्य से भिन्न है तो उसे एक वर्ग माना जाएगा और समानता का सिद्धान्त उस पर अकेले लागू होगा लेकिन इसका आधार वैज्ञानिक तर्कसंगत और युक्त होना चाहिए।

1. इसमें नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त निहित है।
2. यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है।
3. इसमें विधि के शासन का उल्लेख है।
4. इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है। 4.इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है।

अनुच्छेद 15: इसमे सामाजिक समानता का उल्लेख है इसमें निम्न प्रावधन है।

इसमे सामाजिक समानता का उल्लेख हैं,इसमें निम्न प्रावधन है।

15(1) राज्यकिसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15(2) एक नागरिक दूसरे के साथ धर्म मूल वंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर दुकानों, होटलों, सार्वजनिक भोजनालयों व सार्वजनिक मनोरजन के स्थानों तथा राज्य-निधि द्वारा पूर्णतः व अंशतः पोषित हो कूओं, तलाबों, सड़कों व सार्वजनिक समागम के स्थानों पर भी कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15(3) राज्य स्त्रियों और बच्चों कोविशेषसुविधाएं दे सकता है, वर्तमान में महिलाओं को दिया गया आरक्षण का आधार यही अनु0 है।

15(4) राज्य सामाजिक व शौक्षणिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को विशेष सुविधाएं दे सकता है। वर्तमान में OBC, SC, ST का आधार यही अनु0 है। वर्तमान में OBC, SC ,ST का आधार यही अनु0 है।

अनुच्छेद 16:इसमें अवसर की समानता का उल्लेख है। भारत में एकल नागरिकता है इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान के किसी अनु0 में नहीं हैं ।लेकिन इसका विचार अप्रत्यक्ष रूप से इसी में निहित है। इसमें निम्न प्रावधान हैं

अनुच्छेद 16(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने के अवसर की समानता होगी।

अनुच्छेद 16(2) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने में अवसर की समानता से वचिंत नहीं करेगा अर्थात राज्य किसी भी नागरिक को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग जन्म, स्थान उद्भव व निवास स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर सरकारी पदों नियुक्ति व नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (3) राज्य निवास स्थान के आधार पर कुछविशेषपदों पर भर्ती कर सकते हैंलेकिन इसके सन्दर्भ में कानून बनाने का अधिकार उस राज्य को नहीं बल्कि संसद को प्राप्त होगा और संसद इस प्रकार से कानून बनायेगी कि वह अर्हता देश भर में समान रुप से लागू रहेगी।

अनुच्छेद 16(4) यदि राज्यों की राय में सरकारी नौकरियों में सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हैंतो राज्य उन्हें आरक्षण दे सकता है।

वर्तमान में इसी अनु0 के द्वारा O.B.C., S.C.व S.T. को आरक्षण प्रदान किया गया है। ध्यान रहे कि आरक्षण सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिया जा सकता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है।

वर्गो को दिया गया आरक्षण उर्ध्वाधर हैं जबकि महिलाओं को दिया गया आरक्षण क्षैतिज है। अर्थात प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने ही वर्ग में आरक्षण की हकदार होगी। उल्लेखनीय है कि महिलाओं को आरक्षण इस अनु0 के द्वारा नहीं दिया गया हैं क्योंकि प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती। पिछड़े वर्ग को आरक्षण मण्डल रिपोर्ट के आधार पर 27% वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा 1990 में दिया गया। इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया था कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती और प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता।इ से प्रभावहीन बनाने के लिए अर्थात SC व ST को प्रोन्नति में आरक्षण देने के लिए 77 वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित करके संविधान में अनु0 16 (4) (क) जोड़ा गया तथा आरक्षण की सीमा 50% से अधिक बढ़ाने के लिए 81 वां संविधान संशोधन अधिनियम लाया गया और 16 (ख) जोड़ा गया।

अनुच्छेद 17: इसमें भी सामाजिक समानता का ही उल्लेख है इसका उद्देश्य जात-पात के भेदभाव को समाप्त करना है। छुआछुत भारत की एक बहुत बड़ी समस्या थी इस अनु0 पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है। इसमें कहा गया

है कि अश्पृश्यता का अन्त किया जाता है,इसका प्रत्येक रूप में आचरण निषिद्ध है तथा इसका उल्लघंन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा। इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद ने अश्पृश्यता अपराध उन्मूलन अधिनियम 1955 पारित किया। इसे 1976 में और कठोर बनाते हुए कहा गया कि इसके भेदभाव में दोषी पाए गए व्यक्ति को चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

अनुच्छेद 18: स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न प्रकार की उपाधियां वितरित करके भारत को विषमता मूलक बनाया था अतः भारत में समानता लाने के लिए उपाधियों का अन्त करना आवश्यक था। इसमें निम्न प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य अपने नागरिकों को विद्या या सेना सम्बन्धी सम्मान के सिवाय अन्य कोई उपाधि नहीं देगा। भारत का कोई नागरिक विदेशी राज्यसे कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। भारत का कोई गैर नागरिक या विदेशी जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

बालाजी राघवन बनाम भारत संघ(1996) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनु018 जन्म आधारित उपाधियों का निषेध करता हैं, लेकिन कर्म आधारित उपाधियों का नहीं- भारत रत्न, पद्म भूषण, पद्मविभूषण व पद्मश्री आदि ऐसी उपाधियों हैजो जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है ये विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दी जाती हैं अतः अनु 18 इनका निषेध नहीं करता लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इन उपाधियों का प्रयोग नाम के आगे व पीछे नहीं किया जायेगा। जनता पार्टी सरकार ने 1977 में भारत रत्न आदि जैसी उपाधियों पर रोक लगा दिया लेकिन 24 जनवरी 1980 से इन्दिरा गाँधी सरकार ने इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया।

6.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद 19 से 22

संविधान में स्वतन्त्रता की अवधारणा फ्रांसीसी क्रान्ति की देन है। इसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य है। भारतीय संविधान के अनु0 19 से लेकर अनु0 22 तक में स्वतन्त्रता का व्यापक विश्लेशण व विवेचन किया गया है।

अनुच्छेद 19: यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है। यह स्वतन्त्रता केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान की गयी है। अनु019 में वर्णित सभी स्वतन्त्रताएँ सामाजिक है। अनु0 19 में वर्णित स्वतन्त्रता आपातकाल में अनु0 358 के अन्तर्गत स्वतः निलम्बित हो जाती है। अनु0 19(1) क से लेकर अनु0 19(1) छ तक में सात स्वतन्त्रताओं का उल्लेख था लेकिन अनु0 19(1)च में वर्णित सम्पत्ति के अर्जन धारण और व्ययन की स्वतन्त्रता को निकाल देने से वर्तमान में 6 स्वतन्त्रताएँ है। प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनु0 19(2) से लेकर 19 (6) तक द्वारा क्रमशः युक्त 2 निर्बन्धन लगाया गया है। यह निर्बन्धन क्रमशः राष्ट्र की एकता व अखण्डता भारत की सम्प्रभुता सार्वजनिक हित आदि के आधार पर लगाया गया है।

अनु0 19(1)क इसमें भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। प्रेस की स्वतन्त्रता इसी अनु0 में निहित है। अनु0 19(2) के द्वारा निर्बन्धन है।

अनु0 19(1)ख इसमें शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में जलूस निकालने का अधिकार निहित हैयह धार्मिक व राजनीतिक दोनों प्रकार का हो सकता हैं। 19(3) द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)ग इसमें संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान हैंइसी में राजनीतिक दल, दबाव समूह तथा सामाजिक व संस्कृतिक संगठन बनाने का विचार निहित है।19(4) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)घ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनु0 19(1)ङ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कहीं आवास बनाने निवास करने व बस जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। 19(5) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)छ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति, व्यापार, व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु0 19(6) के द्वारा सार्वजनिक हित के आधार पर इस भी प्रतिबन्ध है।

अनुच्छेद 20: इसमें अपराध की दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें निम्न तीन बाते कही गयी है।

अनु0 20(1) अपराध करते समय लागू कानून के अतिरिक्त अन्य किसी कानून से व्यक्ति को सजा नहीं दी जाएगी अर्थात यह कार्योत्तर विधियों से संरक्षण प्रदान करता है।

अनु0 20(2) एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोहरा दण्ड नहीं दिया जाएगा लेकिन यदि अपराध की प्रकृति भिन्न भिन्न है तो व्यक्ति को दोहरा दण्ड दिया जा सकता हैअर्थात यह दोहरे दण्ड का निषेध करता है। यह प्रावधान अमेरिका से गृहीत है।

अनु 20(3) किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाहि या साक्ष्य देने के लिए वाध्य नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद21: भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही वंचित करेगा अन्यथा नहीं।ए0 के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्वतन्त्रता कार्यपालिका के विरुद्ध नहीं अर्थात विधायिका कानून बनाकर किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विदेश भ्रमण की स्वतन्त्रता को दैहिक स्वतन्त्रता में निहित मौलिक अधिकार मानते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो स्वतन्त्रता अनु0 19 में नहीं है वह दैहिक स्वतन्त्रता में निहित है।उसने प्राण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि इसका अर्थ भौतिक अस्तित्व या पशुवत अस्तित्व से नहीं है बल्कि इसका अर्थ मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीना है।और वे सभी बातें जो किसी व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती हैं अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक अनु0 21 में निहित कई मौलिक अधिकारों की घोषणा कि जिसमें से कुछ निम्न है।

1. निजता का अधिकार
2. हिरासत में मृत्यु के विरुद्ध अधिकार
3. पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा का अधिकार
4. आश्रय प्राप्त करने का अधिकार
5. विदेश जाने का अधिकार

6. जीविकोपार्जन का अधिकार
7. पारिवारिक पेंशन का अधिकार
8.स्वच्छ जल पाने का अधिकार
9. स्वास्थ का अधिकार
10. एकान्त कारावास के विरुद्ध अधिकार
11. प्राथमिक शिक्षा का अधिकार

46वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया।21(क) राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा। 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2000 द्वारा संविधान के मूल कर्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खण्ड जोड़ा गया है, क्योकि एक नवीन अनुच्छेद 21(क) जोड़कर 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु कें बच्चोंके माता पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षको का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हे शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

वस्तुतः संविधान में उल्लेखित मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक उपबन्धों के माध्यम से इनके हनन होने पर संरक्षण की व्यवस्था की गयी हैलेकिन मूल कर्तव्यों का पालन न करने पर किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं हैं तथापि भारत के सभी नागरिकों का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है।

अनुच्छेद 22 इसमें बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 22(1) बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को बन्दी बनाए जाने के कारणों से तत्काल अवगत कराना होगा।

अनु0 22(2) बन्दी बनाए गए व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना होगा और बन्दी बनाए जाने का कारण बताना होगा। इसी में कहा गया है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अपने रुचि या मनपसन्द के वकील से परामर्श लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनु0 22(3) निम्नलिखित दो प्रकार से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता-
क .निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति
ख. शत्रु देश के व्यक्ति पर

(क) निवारक निरोध किसी घटना के घटित होने के पूर्व ऐसी कार्यवाही करना जिससे वह घटना घटित न होने पाए निवारक निरोध कहलाता है। इसके अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर निम्न नियम लागू होता है।

(1) उसे तीन महीने तक बिना कोई कारण बताए जेल में निरूद्ध रखा जा सकता हैं

(2) तीन महिने बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके समकक्ष व्यक्ति की अध्यक्षता में बने एक तीन सदस्यीय परामर्श दात्री बोर्ड के समक्ष उपस्थित करना होगा।

6.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा को बहाल करने के लिए तथा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने के लिए अनु0 23 व 24 को मौलिक अधिकार के रुप में शामिल किया गया यह सरकारी व प्राइवेट दोनों व्यक्तियों के विरुद्ध प्राप्त है।

अनुच्छेद23(1) मनुष्यों के क्रय विक्रय,विशेषकर स्त्रियों व बच्चों के विक्रय पर रोक लगाया जाता है तथा बेगार व बलात श्रम को निषिद्ध घोषित किया जाता है।

अनु0 23(2) राज्य राष्ट्रीय हित में बल पूर्वक कार्य ले सकता है जैसे अनिवार्य सेना में भर्ती का अभियान, ऐसी सेवा में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाती या वर्ग के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद24: 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखानों या संकटमय परियोजनाओं में नहीं लगाया जाएगा।

6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद 25- 28

भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है लेकिन इसकी परिभाषा संविधान के किसी भी अनु0 में नहीं दी गयी है। भारतीय संविधान के अनु0 25 से28 में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारों को व्यापक प्रावधान है । यह अधिकार अल्प संख्यक व बहुसंख्यक दोनों को ही प्राप्त है। स्वास्थ्य, नैतिकता व सुव्यवस्था के आधार पर भी युक्त निर्बन्धन लगाया गया है।

अनुच्छेद 25(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तः करण की स्वतन्त्रता तथा किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने व प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 25(2) लौकिक, राजनैतिक, आर्थिक व वित्तीय आधारों पर उपर्युक्त स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।हिन्दू मन्दिरों को उसके सभी वर्गो के लिए सेवा लेने का आदेश दिया जा सकता है। इसमें सिक्ख धर्म, जैन धर्म व बौद्ध धर्म के लोग भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 26: इसमें धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक कार्यो की पूर्ति या प्रयोजन हेतु किसी भी संस्था की स्थापना करने या पोशण करने का अधिकार प्राप्त है। जगम(चल) व स्थावर(अचल) सम्पत्ति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है। ऐसा प्रशासन विधि के अनुसार होगा।

अनुच्छेद 27: धार्मिक कार्यो हेतु किसी व्यक्ति को कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 28:राज्य निधि द्वारा पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। लेकिन ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनका प्रशासन तो राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या ट्रस्ट के अधीन स्थापित है जिनका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा देना है लेकिन ऐसी संस्थाओं के प्रार्थना सभाओं में किसी व्यक्ति को शामिल होने या न होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता यदि व अवयस्क हैतो अभिभावक की सहमति से शामिल हो सकता है।

6.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :अनुच्छेद 29- 30

यह बहुसंख्यको से अल्पसंख्यकों के हितोंकी रक्षा के लिए संविधान निर्माताओं ने संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया यद्यपि संविधान में अल्पसंख्यक की कोई व्याख्या नहीं की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी धार्मिक एवं भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करते हुए उसकी अस्पष्ट परिभाषा से इन्कार कर दिया।

अनुच्छेद 29(1) भारत राज्य क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों की जो भाषा, संस्कृति या लिपि है उसे उन्हें बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(2) धर्म, मूलवंश, भाषा व जाति के आधार पर किसी नागरिक को किसी राज्य द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थामें प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में या भाग के अनुभाग में प्रत्येक धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों को अपने रूचि व मनपसन्द की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने या पोशण करने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 30(2) राज्य किसी संस्था को सरकारी सहायता देते समय इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगी कि यह संस्था किसी भाषा या धर्म पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग के हित में है।

6.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

यह स्वंय एक मौलिक अधिकार होते हुए अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। डॉ0 अम्बेडकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान निर्मात्री सभा में कहा यदि कोई मुझसे पूछे कि भारतीय संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद हैजिसे निकाल देने पर संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो मै इस अनुच्छेद के सिवाय अन्य किसी का नाम नहीं लूगाँ।

डॉ0अम्बेडकर ने अनु032 को संविधान का हृदय व आत्मा बताया। अनु032 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय संविधानका संरक्षक हैऔर अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक है।

अनुच्छेद 32 (1) व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है।

अनुच्छेद 32(2) इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश, निर्देश, रिट या प्रलेख जारी कर सकता है। इसी के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है। अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय उसी प्रकार की रिट जारी करके संविधान का अविभावक बन जाता है।

जहाँ अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिट जारी कर सकता हैअर्थात उसे विवेकाधिकार की शक्ति प्राप्त है। वहीं पर अनु0 32(2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही रिटें जारी कर सकता है। अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए वह रिट तब जारी करता हैंजब 139(क) के अन्तर्गत संसद विधि बनाकर उसको ऐसा करने का अधिकार दें।

मूल संविधान में इस बात का प्रावधान था कि जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ हैकेवल उसी व्यक्ति के न्यायालय जाने पर न्यायालय रिट जारी करेगा लेकिन अब जनहितवाद के सिद्धान्त के आ जाने पर ऐसा नहीं रहा।

जनहितवाद का सिद्धान्त भारत ने अमेरिका से लिया है। पीपल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में बैठी संविधान पीठ ने सन1980 में एक निर्णय दिया जिसे जनहित वाद के नाम से जाना गया। इसमें कहा गया कि यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ हैऔर वह व्यक्ति न्यायालय जाने में समक्ष नहीं है, तो यदि उसका कोई मित्र या रिश्तेदार या शुभ चिन्तक एक पत्र के माध्यम से भी न्यायालय को सूचित करे तो न्यायालय उस पत्र को उसी प्रकार से स्वीकार्य करेगा जैसे रिटपिटीशन स्वीकार की जाती है। बशर्त यह पत्र राजनीतिक भेदभाव और पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो अन्यथा वह व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी होगा।

इस सिद्धान्त के आ जाने से न्यायपालिका ने कार्यपालिका व विधायिका के तमाम कार्यो को अवैध घोषित किया जो कि मौलिक अधिकारों के विरूद्ध थे इस लिए कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता की ओर बढ़ रही है। न्यायिक सक्रियता का संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है, यह न्यायिक पुनरावलोकन का विस्तारित रूप है। न्यायिक सक्रियता का आधार जनहित वाद है।
अनुच्छेद 32(2) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय 5 रिट जारी करता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेशण, अधिकार पृच्छा

- बंदी प्रत्यक्षीकरण/Habeas corpus(सशरीर प्राप्त करना):किसी बंदी व्यक्ति के न्यायलय के समक्ष लाकर उसके गिरफ्तारी का कारण जानना ,यदि कारण वैध नहींहै तो उसे मुक्त करना।यह रीत निवारक नजर्बंदियों पर लागू नहीं होती हैं।
- परमादेश/Mandamus(हम आग्या देते हैं): व्यक्ति अथवा संस्था को कर्तव्य पालन के आदेश दिए जाते हैं(यह आदेश राष्ट्रपति और राज्यपाल को नहीं)।
- प्रतिषेध/Prohibition(मना करना): उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता हैजिसका उद्दश्य अधीन न्यायलय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से रोकना हैं।
- उत्प्रेशण/Certiorari(और अधिक सूचित होना): उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है,जिसमे अधीनस्थ न्यायलय से वहाँ चल रहे वाद से सम्बंधित कागजात मांगे जाते है।प्रतिषेध रोक के रूप में,उत्प्रेशण उपचार के रूप में समझाजासकताहै।
- अधिकार पृच्छा/Quo-warranto-इस लेख द्वारा न्यायलय किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने वाले को वह कार्य करने से रोकता हैंजिसके वह कानूनी रूप से योग्य नहीं है।

यहाँ हम यह भी सपष्ट करना चाहते हैं कि अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयभीरिट जारी कर सकता है।

अनुच्छेद 33:संसद विधि बनाकर सशस्त्र बलों (अर्द्धसैनिक बल) सेना बलों व पुलिस बलों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता हैऐसा इसलिए कि उसमें परस्पर अनुशासन बना रहे जिससे वे अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

अनुच्छेद 34:भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में सेना विधि (मार्शल ला) लागू हैतो संसद कानून बनाकर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकती है।
अनुच्छेद 35:मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद विधि बना सकती हैं इसी अनु0 के अन्तर्गत अश्पृश्यता अपराध अधिनियम जैसे कानून बने।

6.4 मूल कर्तव्य

यदि किसी सभ्य समाज के प्रमुख लक्षणों में एक हैं उसके नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकार,जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है तो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसके नागरिकों के कर्तव्य, क्योंकि सभी के अधिकारों की पूर्ती तभी हो सकती है जब सभी अपने कर्तव्यों के अनुपालन के प्रति भी संवेदनशील हों।
भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध ही मौलिक कर्तव्यों की याद दिलाता है और जब कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता ग्रहण करता हैतो उसे मौलिक कर्तव्यों सम्बन्धी शपथ लेनी पड़ती है। समाजवादी देश कर्तव्यों पर अधिक बल देते है जबकि उदारवादी देश अधिकारों पर अधिक बल देते है।
मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था।42वें अधिनियम के द्वारा संविधान में भाग 4(क) और अनु0 51(क) जोड़ा गया और इसमें 10 मौलिक कर्तव्य रखे गये ये मौलिक कर्तव्य सम्बन्धी निर्णय स्वर्ण सिंह समिति की अध्यक्षता में लिए गए थे। ये पूर्व सोवियत संघ से लिए गये हैं।86 वें अधिनियम द्वारा 2002 एक और मौलिक कर्तव्य जुड़ जाने से अब इनकी संख्या 11 हो गयी है।

मौलिक कर्तव्य न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैंअर्थात न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते इसके बाबजूद व्यक्ति के लिए इसका पालन करना अनिवार्य हैइसका उल्लंघन होने पर संसद कानून बनाकर दण्ड निर्धारित कर सकती है।नयी राष्ट्रीय ध्वज आचार संहिता 2002 के द्वारा यह नियम निर्धारित कर दिया गया है कि 15 अगस्त व 26 जनवरी के अलावा अन्य दिवस पर भी राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सकता हैलेकिन वह जमीन और पानी से छूता हुआ नहीं लगना चाहिए।

अनु 51(क) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा-
1) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शो, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
2) स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसके अक्षुण्ण रखे।
4) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान मातृत्व की भावना का निमार्ण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।
6) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें।
7) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत बन झील नदी और वन्य जीव हैं रक्षा करे और उसका सबर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

9) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

10) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊचाइयों को छू ले।

11) माता पिता या संरक्षक, 6से14वर्ष की आयु वाले अपने बच्चे या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अभ्यास प्रश्न

1.मूल संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी थी ?

2.वर्तमान समय में मूल अधिकारों की संख्या कितनी है ?

3.अनुच्छेद ३००(क) किसका प्रावधान करता है ?

4.मूल कर्तव्यों का संविधान में प्रावधान किसकी सिफारिस से किया गया है ?

5.मूल कर्तव्यों की संख्या कितनी है ?

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैऔर ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात हैकि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा जा सकती है।किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। संविधान में मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

6.6 शब्दावली

मौलिक अधिकार - वे अधिकार जो व्यक्तित्व के विकास में मूलभूत होते है। जिनके बिना विकास नहीं हो सकता।

निवारक निरोध - भविष्य में अपराध करने की आशंका से किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी जिससे अपराध को रोका जा सके निवारक निरोध कहलाता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. 7 , 2. 6 , 3.संपत्ति का कानूनी अधिकार , 4.स्वर्ण सिंह समिति के सिफारिस के आधार पर , 5. 11

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम० (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी०एच० आई० लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी०डी० (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ० पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ० वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं ? स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या कीजिये।

2.संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार की विवेचना कीजिये।

इकाई 7 : राज्य के नीति निर्देशक तत्व

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 नीति निर्देशक तत्व
7.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर
7.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व
7.4 सारांश
7.5 शब्दावली
7.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबन्धात्मकप्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 6 के अध्ययन के उपरान्त हम जान सके हैं कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

इस इकाई 7 में हम संविधान के भाग 4 में उपबंधित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगे । इसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से इन निर्देशक तत्वों के माध्यम से एक कल्याण कारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया है । यद्यपि ये निर्देशक तत्व न्यायलय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं । लेकिन हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि देश में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है जिसमें सरकार की जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायित्व होता है ।ऐसी स्थिति में इन निर्देशक तत्वों कि अनदेखी कोई भी सरकार नहीं कर सकती है । इन्ही पक्षों का हम अध्ययन हम इकाई के अंतर्गत करेंगे ।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि-

1. नीति निर्देशक तत्वों को क्यों संविधान में उपबन्ध किया गया।
2. किन किन निर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन हुआ उसके परिणाम क्या रहे।
3. इसमें कल्याणकरी राज्य की अभिव्यक्ति कैसे होती है।
4. मूल अधिकार और नीति निर्देशक तत्वों में क्या सम्बन्ध है।

7.3 नीति निर्देशक तत्व

राज्य की नीतियां क्या होनी चाहिए और कैसी होनी चाहिए इसी को बताने वाले दूसरे तत्व का नाम नीति निर्देशक तत्व हैअर्थात नीति निर्देशक तत्व के आदर्श हैजिनके आधार पर राज्य अपनी नीतियां तय करते हैं।नीति निर्देशक तत्व का उद्देश्य भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व को संविधान की आत्मा के रूप में देखा था मौलिक अधिकारों का उद्देश्य एक स्वतन्त्र एवं समता मूलक समाज की स्थापना करना है, जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना हैतथा ऐसी वाह्रय परिस्थितियों का सृजन कर सके। मौलिक अधिकार एक साधन हैंऔर नीति निदेर्शक तत्व एक लक्ष्य।

भारतीय संविधान के भाग4 में अनु036 से लेकर अनु051 तक में नीति निर्देशक तत्वों का व्यापक प्रावधान किया गया है। अनु0 36 व 37 नीति निर्देशक तत्व की प्रकृति बताते है। अनु0 38 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख है अर्थात मूल संविधान में इसका उल्लेख कुल 14अनुच्छेद में था। 42वें अधिनियम द्वारा अनु0 39(क) अनु 43 (क) और 48 (क) जुड़ जाने से अब कुल 17 अनुच्छेद हो गए हैं। संविधान की प्रस्तावना में निहित आदर्शो अर्थात सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय को इसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं साकार रुप से प्राप्त किया जा सकता है।

नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है। अर्थात ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। इसे लागू करना देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों पर निर्भर हैजैसे देश में भौतिक संसाधन बढ़ते जाएगें राज्य उसे अपनी नीति का हिस्सा बनाता जाएगा। नीति निर्देशक तत्वों को पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

संविधान निमात्री सभा में नीति निर्देशक तत्व पर बहस के दौरान इसकी आलोचना करते हुए कुछ लोगों ने इसे धार्मिक उपदेश या नैतिक शिक्षा बताया। टी. कृष्णमाचारी ने इसे सच्ची भावनाओं का कूड़ादान बताया के.टी. शाह के अनुसार नीति निर्देशक तत्व एक ऐसे चेक की भाँति है जिसका भुकतान बैंक की सुविधा पर निर्भर है।
डॉ0 अम्बेडकर ने उपर्युक्त आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि भले नीति निर्देशक तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं हैंलेकिन इसके पीछे सबसे बड़ी शक्ति जनमत की है और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाये संविधान लागू होने से लेकर आज तक सरकार ने इसे हर सम्भव से लागू कराने का प्रयास किया हैं इसके बावजूद अधिकांश नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा हुई है।
नोट - नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक आदेश हैजो कि राज्य को कुछ कार्य करने का आदेश देते है।

अनुच्छेद 36: इसमें राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है और कहा गया है कि यहाँ राज्य शब्द का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद 37 यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं इसके बावजूद वे देश के शासन में मूलभूत हैऔर राज्य का यह कर्तव्य हैकि वह अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्ही तत्वों के आधार पर बनाए।
उपर्युक्त बातों से निम्न 2 अर्थ निकलता है-
1.ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते।
2.यहां कर्तव्य इच्छा का नहीं बल्कि अनिवार्यता का प्रतीक है।

अनुच्छेद 38: इसका उद्देश्य भारत में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है इसमें लोककल्याणकारी राज्य का विचार निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है।
अनुच्छेद 38 (1) राज्य लोककल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएगा जिसमें देश के सभी नागरिकों के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो सके।
अनुच्छेद 38(2) राज्य सामान्यतः आय की असमानता को कम करने विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए वर्गो व समूहों के बीच प्रतिष्ठा सुविधाओं व अवसर की असमानता को भी कम करने का प्रयास करेगी।
इसे 44 वें अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य भारत में समाजवाद लाना है इस पर जय प्रकाश नारायण का पूर्ण प्रभाव है।

अनुच्छेद 39: इसके द्वारा भारत में आर्थिक लोकतन्त्र है कि राज्य अपनी आर्थिक नीतियों का निर्धारण निम्न प्रकार से करेगा।
अनुच्छेद 39(a) पुरूषों और स्त्रियों अर्थात सभी कर्मकारों को अपनी जीविका प्राप्त करने का पर्याप्त साधन मिल सके।
अनुच्छेद 39(b) देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बटा होना चाहिए कि वह समुदाय के पर्याप्त हित का साधन बन सके।
अनुच्छेद 39(c) देश की आर्थिक नीतियों का संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसका एक स्थान पर अहितकारी संकेन्द्र न होने पाए।
अनुच्छेद 39(d) पुरुषों और स्त्रीयों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।
अनुच्छेद 39(e) पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वस्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश हो कर नागरिकों को ऐसे रोज़गार में न जाना पड़े जो उनकी युवा शक्ति के अनुकूल न हो।
अनुच्छेद 39(f)सुकुमार बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए गरिमामय वातावरण का सृजन किया जाए तथा सुकुमार बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा की जाए।
अनुच्छेद 39(A) इसमें समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया है। दूसरे शब्दों में राज्य का विधिक तन्त्र इस प्रकार से कार्य करेगा कि देश के सभी नागरिकों को समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो सके। किसी को भी आर्थिक अयोग्यता या अन्य कारण से इससे वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 40 राज्य पंचायतों का संगठन करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार देगा जिसमें वे एक स्वायत्व शासन की इकाई की दिशा में विकसित हो सके।

इस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव हैइसे 73 वें व 74 वें अधिनियम के द्वारा संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दिया गया लेकिन अभी भी पंचायतें स्वायत्त संस्था के रूप में विकसित नहीं हो सकीं हैं। वेआर्थिक रूप से विपन्न हैंपंचायते भी राज नीति का अखाड़ा बनती जा रहीं हैं। अज्ञानता और अशिक्षा पंचायती राज के विकास में बाधक है।

अनुच्छेद 41 राज्य विकास एवं क्षमता की सीमा भीतर कुछ मामलों में काम पाने, शिक्षा पाने बेकारी अंगहानि तथा इसी प्रकार की अन्य अयोग्यता होने पर राज्य उसे दूर करने का प्रयास करेगा। इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में डवा आगनबाड़ी, प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान, आपरेशन बोर्ड योजना, राष्ट्रीय एड्स नीति विकलांगों को छात्रवृति एवं रिक्शा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्यक्रम चलाए।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्यायसंगत तथा मान्योचित दशा में सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा प्रसूति सहायता उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 43 राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मचारियों के उचित वेतन शिष्ट जीवन स्तर काम के घन्टे आदि को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा तथा इसी में कहा गया है। राज्य ग्रामीण कुटीर उद्योगों को सहकारी एवं व्यक्ति प्रोत्साहन भी देगा।
अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों के भाग लेने व्यवस्था का प्रावधान। इसे 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 44 इसमें कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार संहिता होनी चाहिए। धर्म निरपेक्षता को व्यवहारिक रूप देने के लिए इसे संविधान में शामिल किया गया हैं लेकिन राजनीतिक कारणों से इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका। हिन्दूओं के लिए हिन्दू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम व दहेज निषेध जैसे कानून बने हैं। लेकिन मुसलमानों के लिए ऐसा कोई कानून नहींहैं साहबानों के केस में न्यायालय ने इसे लागू कराने की बात कही थी राजीव गांधी ने 1986 में ऐसा कानून बनवाया भी था लेकिन मुसलमानों के व्यापक विरोध के कारण सरकार ने इसे समाप्त कर दिया।भारत सरकार ने तीन तलाक निषेध क़ानून पारित कर मुस्लिम महिलाओं के लिए गरिमामय जीवन के की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है।

अनुच्छेद 45: 86वें अधिनियम के द्वारा इसे संशोधित किया गया,'राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा' इसे मौलिक अधिकार बनाकर 21(क) में रख दिया गया है और इसके स्थान पर 'राज्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चो के स्वास्थ एवं शिक्षा परविशेषध्यान देगा' जोड़ा गया है।

अनुच्छेद 46 राज्य के कमजोर वर्गो विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनूसूचित जनजातियों के आर्थिक एवं शैक्षिक हितों को बढ़ावा देगा तथा समाज के शोषण और अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।
इस पर डॉ0 अम्बेडकर का प्रभाव है इसे क्रियान्वित करने के लिए SCव ST को निःशुल्क कोचिंग संस्थान छात्रवृत्ति प्रतियोगी परिक्षाओं के फार्म में भारी छूट तथा हरिजन एक्ट जैसे कानून का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 47 राज्य लोगों के पोषाहार स्तर व जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा औशधीय प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औशधि को छोड़कर शेश मादक एवं पेय पदार्थो पर प्रतिबन्ध लगायेगा। इसे राजनीतिक कारणों से अभी तक लागू नहीं किया जा सका।

अनुच्छेद 48 राज्य कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से बढ़ावा देगा तथा गायों बछड़ों दुधारू पशुओं वाहक पशुओं के नस्लों को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा इनके बध आदि पर प्रतिबन्ध लगायेगा।
इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में हरित क्रांन्ति पीली क्रांन्ति, नीली क्रान्ति राष्ट्रीय कृषि नीति जैव प्रौद्योगिकी नीति सुधार कार्यक्रम, कृषि विश्व विद्यालयों की स्थापना तथा नये किस्म के बीज एवं खाद्य का निमार्ण आदि हुआ। कई राज्यों ने गोवध आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून भी बनाए।
अनुच्छेद 48(क) राज्य पर्यावरण का संरक्षण एवं संबर्धन करेगा। तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करेगा। इसको क्रियान्वित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा राष्ट्रीय वन्य नीति जैसे कानून बनाये गए।

अनुच्छेद 49 राज्य संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक कलात्मक वस्तुओं और ऐतिहासिक घरोहरों की लुन्ठन विरूपण एवं विकृति से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 50 इसमें कहा गया है कि कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच कार्यो में पृथक्करण होगा। आज भी इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका प्रायः यह देखा जाता है कि कार्यपालिका के बहुत से ऐसे कार्य हैंजो न्यायपालिका करती नजर और आती हैंऔर न्यायपालिका के कार्य कार्यपालिका करती नजर आती है।

अनुच्छेद 51 राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से निपटाएगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय संन्धि कानूनों एवं वाध्यताओं का पालन करेगा।
इस पर पं0 नेहरू का प्रभाव है इसमें भारत की विदेश नीति का उल्लेख है । इसे लागू करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी पंचशील समझौता किया । संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था व्यक्त किया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया और निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया।

7.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर

1.मौलिक अधिकार राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात ये राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते हैं जबकि नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक है अर्थात राज्य को कुछ कार्य करने के लिए आदेश देते है।

2.मौलिक अधिकार न्याय योग्य हैं अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।

3.मौलिक अधिकार निरंकुश व सीमित है इन पर आपात काल में प्रतिबन्ध लगया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व निरकुश और असीमित हैं इन पर कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता।

4.मौलिक अधिकारों का स्वरूप केवल राष्ट्रीय है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का स्वरूप राष्ट्रीय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भी है।

7.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व

मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व के बीच विवाद सर्वप्रथम चम्पाकम दोराईराजनबनाम मद्रास राज्य के मामले में सन 1951 में आया इस मामले में न्यायालय ने कहा मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता हैं जबकि नीति निर्देशक तत्वों के साथ ऐसी कोई बात नहीं हैं इसलिए मौलिक अधिकार को नीति निर्देशक तत्व पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लगभग यही बात केदार सिंह बनाम विहार राज्य व सज्जन कुमार बनाम राजस्थान राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा।

गोलकानाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। यह निर्णय 9 न्यायाधीशों की संविधान ने 5:4 के बहुमत ये दिया था।

1971 में संसद ने 24 वां 25वां अधिनियम पारित किया। 24 अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि संसद को अनु0 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों संहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त हैं और 25 वें अधिनियम द्वारा संविधान में अनु0 31 (ग) जोड़ते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि अनु0 39 (b) और 39(c) को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 24वें व 25 वे अधिनियम पर सुनवायी करते हुए दोनों को वैध ठहराया लेकिन 24 वें के सन्दर्भ में कहा कि वह संविधान के मूल ढ़ाचे को नष्ट न करता हो। पहली बार सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढ़ाचे शब्द का प्रतिवादन किया संविधान का मूल ढ़ाचा का आधार न्यायिक र्निवचन है। केशवानन्द भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ 13 न्यायाधीशों की बैठी थी जिसमें 7:6 के अनुपात से निर्णय हुआ।

1976 में 42 वां अधिनियम पारित किया गया जिसमें कहा गया कि अनु0 368 के अन्तर्गत संशोधनका असीमित अधिकार है । इसकी संवैधानिक वैधता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती तथा ये कहा कि सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

42 वें अधिनियम पर सुनवायी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980 के मामले मे 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें कहा गया था कि इसकी वैधता को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का मूल ढ़ाँचा हैंऔर 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। 25 वे अधिनियम को वैध ठहराते हुए केवल अनु0 39(b) और अनु0 39(c) को ही मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता बताया।

अभ्यास प्रश्न

1.राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। यह प्रावधान किस अनुच्छेद में है ?

2.भारतीय संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है ?

3.सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है किस अनुच्छेद में है ?

4. समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किस अनुच्छेद में किया गया है ?

5.पंचायतों के गठन का निर्देश किस अनुच्छेद में किया गया है ?

7.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में हमने यह पाया है कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निर्देशक तत्व का प्रावधान किया है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके है हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात सरकार के द्वारा इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायलय में नहीं जा सकते है। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश में संसदीय शाशन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है । और नियतकालिक चुनाव में पुनः जनता के जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए । इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए है उनकी अनदेखी सरकार नहीं करी सकती है। जैसा कि पंचायतो का गठन और महिलाओं ओर बच्चो तथा समाज के पिक्षडे वर्गों के लिए भी नीतिया बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि नयायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं है परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

7.5 शब्दावली

कल्याणकारी राज्य - जिस राज्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को वे सुविधांए प्रदान की जाती है, जिन्हें समक्ष लोग स्वयं प्राप्त करते है।

सामाजिक न्याय - समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले को प्राथमिकता के आधार पर बिना की जाति धर्म के भेद भाव किये आवश्यक सेवाए प्रदान करना है।

7.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.अनुच्छेद 51, 2. भाग-4 , 3. अनुच्छेद 39(d) 4.अनुच्छेद 39 5.अनुच्छेद 40

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम० (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी०एच० आई० लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी०डी० (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

4.मंगलानी,डॉ.रूपा – भारतीय शासन और राजनीति

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ० पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ० वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नीति निर्देशक तत्व राज्य को कल्याण कारी राज्य बनाने लिए किया गया भागीरथ प्रयास है । स्पष्ट कीजिये ।

2. नीति निर्देशक तत्व और मौलिक अधिकारों में अंतर करते हुए , भारत में इनके महत्व की विवेचना कीजिये ।

इकाई 8 : संविधान संशोधन प्रक्रिया

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 संविधान संशोधन
    8.3.1 भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया
    8.3.1.1 सधारण बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन
    8.3.1.2 विशेष बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन
    8.3.1.3 विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों के समर्थन से किया जाने वाला संविधान संशोधन
8.4 भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया की विशेषताएं
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.10निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व की इकाई में हमने नीति निर्देशक तत्वों का अध्ययन किया है जिसमें यह पाया है कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निर्देशक तत्व का प्रावधान किया है । जैसा कि हम इकाई 6 में स्पष्ट कर चुके हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात सरकार के द्वारा इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायलय में नहीं जा सकते है। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश मे संसदीय शाशन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है। और नियतकालिक चुनाव में पुनः जनता के जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए । इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए है उनकी अनदेखी सरकार नहीं करी सकती है। जैसा कि पंचायतो का गठन और महिलाओं ओर बच्चो तथा समाज के पिक्षडे वर्गों के लिए भी नीतिया बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है । इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि नयायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं है परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

इस इकाई 8 में हम भारतीय संविधान में संशोधन के लिए अपनाए जाने वाली प्रक्रियाओं का अध्ययन करेंगे। साथ हम यह भी देखेंगे कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने भारत में सामाजिक संरचना के अनुरूप शासन प्रणाली अपनाई है इसी का अनुसरण करते हुए संविधान में संशोधन के तरीकों का भी उपबंध किया है। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि संविधान निर्माता समय की गतिशीलता और उसके सापेक्ष उत्पन्न होने वाले नवीन चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाने के लिए संशोधन की प्रक्रियाओं का संविधान में प्रावधान किया है।संविधान संशोधन से सम्बंधित इन सभी पक्षों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1. यह जान सकेंगे कि संविधान संशोधन की प्रक्रियाओं का उपबंध क्यों किया गया है।
2. यह भी समझ सकेंगे कि संशोधन के कितने तरीके है।
3. यह व्याख्या करने में सक्षम होंगे कि क्यों संविधान संशोधन के तीन तरीकों का उपबंध किया गया है।

8.3 संविधान संशोधन

समाज गतिशील है, परिवर्तनशील है अर्थात देश-काल की बदलती परिस्थितियों के साथ समाज की प्राथमिकताओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए संविधान निर्माताओं ने यह प्रयास किया कि देश में बदलती परिस्थितियों के साथ उभरती नयी समस्याओं का समाधान समय के साथ संभव हो सके साथ ही केंद्रीय शासन अपनी मनमानी करते हुए संघात्मक ढ़ाचे को आघात न पहुँचा सकें। इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए संविधान संशोधन के तरीके में सरलता और कठोरता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। जिससे संविधान को एक तरफ देश की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढ़ाला जा सकें, तो दूसरी तरफ संघात्मक ढ़ाचे के अनुरूप् संघीय शासन के बहुमत की मनमानी से भी संविधान की रक्षा की जा सकें।

इसलिए भारतीय संविधान संशोधन की पद्धति का समर्थन पं0 जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार किया हैः-

हम चाहते है कि यह संविधान एक ठोस और स्थाई संरचना हो किन्तु यह तथ्य हमारे सामने है कि संविधान कभी स्थाई नहीं होते। उसमें कुछ नमनीयता होनी चाहिए। यदि आप किसी चीज को अनुभय और स्थाई बना देते है तो आप राष्ट्र की अभिवृद्धि रोक देते है।

चाहे जो भी हो हमें संविधान को ऐसा नहीं बनाना चाहिए जैसा कि कुछ महान देशों ने किया है। इतना कठोर कि उसे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप नहीं बदला जा सकता। आज विशेषतः जब विश्व उथल-पुथल से गुजर रहा है हम एक तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे संक्रमण काल में जी रहे है हम जो आज करेंगे वह कल ज्यों का त्यों लागू नहीं हो पायेगा।

प्रो0 के0 सी0 व्हीअर ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय संविधान में कठोरता और सरलता के बीच के मार्ग का अनुशरण किया है।

8.3.1 भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया

भारतीय संविधान के भाग 20 में अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन का उपबन्ध किया गया है। संविधान संशोधन के लिए तीन प्रक्रियाओं को अपनाने का उपबन्ध किया है। इन तीन तरीकों के आधार पर संविधान के अनुच्छेदों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1.सधारण बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन।

2.विशेष बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन।

3.विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों के समर्थन से किया जाने वाला संविधान संशोधन।

8.3.1.1 सधारण बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन

इसके तहत भारतीय संविधान के कुछ उपबन्ध साधारण बहुमत से संशोधित किये जा सकते है। इस प्रकार के संशोधन, संसद के दोनो सदनों (राज्य सभा एवं लोक सभा) में से किसी भी संसद ने प्रस्तुत किया जा सकता है। इस सदन द्वारा साधारण बहुमत से पारित किये जाने के पश्चात वह दूसरे सदन को भेजा जाता है यदि दूसरा सदन भी उसे पारित कर देता है और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के उपरान्त संशोधन लागू हो जाता है।

हमारे संविधान के जो उपबन्ध साधारण बहुमत से परिवर्तित किये जा सकते उसे भी दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

I. संविधान का पाठ नहीं बदलता जबकि विधि में परिवर्तन हो जाता है।

II. जहाँ से संविधान के पाठ में भी परिवर्तन हो जाता है।

जिन उपबन्धों को सामान्य कानून निर्माण के तरीके से परिवर्तित किया जा सकता है वे इस प्रकार है-
1. नयें राज्यों की रचना से संबंधित प्रावधान
2.विधान परिषदों के सृजन और उत्पादन से संबंधित हो
3.संसदीय विशेषाधिकारों के विनिश्चय से संबंधित हो तो,
4.राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति न्यायाधीशों आदि के वेतन और भत्ते।
5.अनुच्छेद 343 में अंग्रेजी के प्रयोग के लिए 15 वर्ष की अवधि का विस्तार।

8.3.1.2 विशेष बहुमत से किया जाने वाला संविधान संशोधन

यहाँ पहले यह स्पष्ट कर दे कि विशेष बहुमत संविधान के उन शेष सभी भागों में संशोधन किया जा सकता है। जिसमें साधारण बहुमत से संशोधन और विशेष बहुमत और आधे राज्यों की विधानमण्डलों के समर्थन से संशोधन किया जा सकता है। इसको और अधिक स्पष्ट करे तो कहा जा सकता है कि संसद संविधान के कुछ भागों में संसद के दोनों सदनों में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई मत समर्थन से पास किय जा सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि यह विशेष बहुमत दोनों सदनों में अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के आधे से अधिक होना चाहिए।

8.3.1.3 विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों के समर्थन से किया जाने वाला संविधान संशोधन

भारतीय संविधान में संशोधन की यह अत्यन्त कठोर पद्वति है और यह संघात्मक शासन के सिद्धान्तों के अनुरूप भी है क्योंकि इसमें किसी विधेयक को संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत से पारित होने केपश्चातकम से कम आधे राज्यों के द्वारा भी समर्थन नितान्त आवश्यक है। संयुक्त राज्य अमेरिका जो संघात्मक शासन का आदर्श रूप माना जाता है वहाँ पर तीन चौथाई राज्यों का समर्थन आवश्यक है। वे उपबंध जिन्हें रीति से ही संशोधित किया जा सकता है वह इस प्रकार हैः-

1.राष्ट्रपति के निर्वाचन का तरीका

2.संघ और राज्य की कार्यपालिका शक्ति

3.उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के सन्दर्भ में

4.संघ और राज्य में विधाई शक्तियों का वितरण

5.संसद के राज्यों का प्रतिनिधित्व से संबंधित

6.अनुच्छेद 368 संशोधन की शक्ति और प्रक्रिया

उक्त विषयों को देखने से यह स्पष्ट हो रहा है कि वे विषय जिनसे सीधे राज्य के हित जुड़े है, और जिनमें राज्यों की भागीदारी है उनमें किसी भी प्रकार का संशोधन करने के लिए राज्यों का समर्थन भी आवश्यक है। ऐसा करके संविधान निर्माता भारत में संघात्मक ढ़ांचे को मजबूत करना चाहते है। क्योंकि वे इस बात से अवगत थे कि भारत की विविधता को एकसूत्र में तभी पिरोया जा सकता है जब एक मजबूत संघ हो।

संशोधन की प्रक्रियाः- भारतीय संविधान में किस रीति से संशोधन किया जाएगा इस संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 368 में किया गया है जो इस प्रकार है। विधेयक किसी भी सदन से प्रस्तुत किया जा सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दे कि धन विधेयक केवल लोक सभा में ही रखा जाता है।

विधेयक का प्रत्येक सदन के बहुमत(जहाँ आवश्यक हो वहाँ विशेष बहुमत से) से पारित होना आवश्यक है। जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके है कि कुछ विषयों में आधे राज्य विधामण्डलों का अनुसमर्थन होना आवश्यक है। इस प्रकार जब कोई विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो विधेयक राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। सामान्य विधेयक की दशा में वह पुनर्विचार के लिए लौटा सकते हैं या विधारित कर सकते है। यदि राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति डे देते है तो विधेयक क़ानून बन जाता है।संविधान संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक नहीं है।धन विधेयक को सदन (लोकसभा) में रखने के पूर्व राष्ट्रपति के पूर्व स्वीकृति आवश्यक है।

8.4 भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया की विशेषताएं

1- यद्यपि भारतीय संविधान के द्वारा संघात्मक शासन की स्थापना की गई है। जिसमें संविधान के द्वारा संघ और राज्यों के बीच शक्ति विभाजन किया गया है। परन्तु संविधान में संशोधन विधेयक केवल संसद के दोनों सदनों (राज्य सभा, लोक सभा) में से किसी में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार से संघ और राज्य के संदर्भ में तो स्पष्ट है कि संघिय संसद को सविधान संशोधन की सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है इसका प्रमुख कारण था कि संविधान निर्माता इकाइयों में किसी भी प्रकार के असंतोष के पैदा होने के कारण को समाप्त करना चाहते थे। लेकिन संसद की इस शक्ति पर एक मर्यादा है, वह यह कि संसद ऐसा कोई संशोधन संविधान में नहीं कर सकती है जो, संविधान के आधारभूत लक्षण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

2- भारतीय संविधान संविधान में संशोधन के वे प्रावधान जिसका संबंध, संघात्मक व्यवस्था से है उनमें संशोधन संसद के विशेष बहुमत से पारित विधायक को आधे राज्यों के विधानमण्डल का समर्थन आवश्यक है। क्योंकि संघात्मक प्रावधानों में संशोधन करने के लिए संशोधन करने के लिए संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत से साथ पास करने के बाद आधे राज्यों के विधानमण्डल में भी पारित होने के बाद ही राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। ऐसा करने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी की राज्यों में अनावश्यक रूप से असंतोष न पैदा हो और संघ स्वेच्छाचारी ढंग से किसी प्रकार के परिवर्तन कर संघीय ढ़ाचे को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकें। इस प्रकार ऐसा प्रावधान देश की एकता और और अखण्डता को सुनिश्चित करने के लिए किया गया है।

3- भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया न तो अमेरिका के समान अत्यन्त कठोर है और न ही ब्रिटेन के समान एकदम लचीली, वरन इसमें कठोरता और सरलता के बीच का मार्ग अपनाया गया है।

इस संदर्भ में एम0 वी0 पायली का कथन युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि ऐसा कोई अन्य संघात्मक संविधान नहीं है जो नम्म और अनम्म दोनों ही प्रकार की संशोधन प्रक्रिया को प्रयोग करे। वह विशेषता केवल भारतीय संविधान में है।

अभ्यास प्रश्न –

1.भारतीय संविधान में संशोधन के कितने तरीके हैं ?

2. संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का उपबंध किस अनुच्छेद में किया गया है ?

3.क्या संशोधन में संघात्मक शासन के अनुरूप कोई प्रावधान है नहीं/हाँ?

4. भारतीय संविधान के किस भाग में में संविधान संशोधन का उपबन्ध किया गया है?

8.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि संविधान निर्माताओं ने बदलते समय के अनुरूप ,संविधान को ढालने लिए ,संशोधन का प्रावधान किया है। उनका मानना था कि समय के साथ नए विषय पैदा हो सकते या पुराने विषयों में कुछ अप्रासंगिक हो सकते है ऐसे स्थिति में इन समस्याओं से निपटने के लिए ही ऐसा प्रावधान किया। लेकिन इस प्रावधान को रखते समय उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि केद्र की सरकार मनमाने तरीके से संविधान में परिवर्तन न कर सके। इसी लिए वे प्रावधान जो संघीय प्रकृति के जैसे – संघ और राज्य के विधाई शक्तियों में कोई परिवर्तन, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व और राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति आदि में संशोधन के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति भी आवश्यक बनाया है। इस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने जहा एक तरफ संशोधन की शक्ति में केंद्र की निरंकुशता पर अंकुश लगाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी तरफ समय के अनुरूप अपने को ढालने की सामर्थ्य भी देने का प्रयास किया है।

8.6 शब्दावली

विशेष बहुमत –संसद के दोनों सदनों में अलग-अलग उपस्थित एवं मतदान करने वालों का दो तिहाई जो सदन के समस्त संख्या के आधे से अधिक भी हो।

संघात्मक शासन – वह शासन जिसमें एक संविधान के द्वारा ,केंद्र और राज्य की सरकार में शक्तियां विभाजित हों।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.तीन, 2. अनुच्छेद 368, 3. हाँ , 4.अध्याय 20

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ रूपा मंगलानी -भारतीय शासन एवं राजनीति

2.आर.एन .त्रिवेदी एवं एम.पी. राय -भारतीय सरकार एवं राजनीति

3.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.ब्रज किशोर शर्मा भारत का संविधान

2.दुर्गादास बसु - भारत का संविधान : एक परिचय

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रियाओं की विवेचना कीजिये।

इकाई 9: राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 राष्ट्रपति
    9.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन
9.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ
    9.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ
    9.4.2 विधायी शक्तियाँ
    9.4.3 राजनयिक शक्तियाँ
    9.4.4 सैनिक शक्तियाँ
    9.4.9 न्यायिक शक्तियाँ
    9.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ
9.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति
9.6 उपराष्ट्रपति
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को भारतीय संविधान के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे। इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिपरिषद के वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रुप में ,समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रुप से समझने में सहायता मिलेगी।

9.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. राष्ट्रपति के बारे में जान सकेगें।
2. राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
3. राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।

9.3 राष्ट्रपति

शासन के तीन अंग होते है। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

9.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है । गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानूगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

1- वह भारत का नागरिक हो

2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,

3-वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,

4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें-

1. संसद के दोनो सदनो (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओ के निर्वाचित सदस्य शामिल होगें

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विघान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1997 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 99(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतो की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल विधायकों की संख्या x 100}}$$

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

।

	प्रत्याशी	A	B	C	D
	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
मतदाता	R	4	1	2	3

	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी। A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानन्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न राष्ट्रपति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता है-1-?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनूच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पॉच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पॉच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियॉं – राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाला जा सकता है।

राष्ट्रपति को इस समय 5 लाख रु0/ माह वेतन है। अनुच्छेद 99(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो ,उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जॉच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है।यदि दूसरा सदन

आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

9.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं ,जो निम्नलिखित है -

9.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 73(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा। राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोडा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है। संसदीय परम्परा के अनुरुप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमन्त्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी। वर्तमान प्रधानमन्त्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं। संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 79(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं। अनुच्छेद 79(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य , सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अनुच्छेद 79(9) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए विना भी मन्त्री रह सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि ,जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण ,मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े ,ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सबन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरुप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं ।भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति ,नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति , राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति,मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निष्चित व्यक्तियों से परामर्श केपश्चातकी जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

9.4.2.विधायी शक्तियाँ

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होनें के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों(लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रुप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 89 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होनें पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर. एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य. कला. विज्ञान. या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करनें के लिए .राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाई पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)

2-अनुच्छेद 191 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन

3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - -वित्त आयोग की सिफारिशें

4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन

9-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन

6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक. जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्यों कि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायको को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जँय। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रुप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए विना ही विधेयक को उसी रुप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगानें वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करनें से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।
अध्यादेश जारी करनें की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो. वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -
1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति ससद द्वरा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।
2-निलम्बनकारी वीटो –

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिष्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

9.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

9.4.4 सैनिक शक्तियाँ

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संध की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्यों कि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं. जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

9.4.5 न्यायिक शक्तियाँ

हमारे संविधन के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रुप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1. न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।
2. क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी श्क्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ- भी प्राप्त हैं , जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन. परिहार या लघुकरण की

शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिख्ति परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में।..जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3. उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे यंविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को. यदि वह आवश्यक समझे तो अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त है -जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न -

-4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

-9 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

9.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे। इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रुप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 352 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि.यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि .युद्ध. वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्धोषणा की जा सकती है। यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था। 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराज्य का मुंह देखना पड़ा। जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार नें 1979 के 44वें संविधानिक सशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा

गया। साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस आपात काल को संसद साधरण बहुमत से समाप्त कर सकती है।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 29 जून 1975 को आन्तारिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी , इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढा सकती है. किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर .यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 290 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम उपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुचछेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 394 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषण की गयी है तो अनुच्छेद 398 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 399 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है ,जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7- 1979 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2) राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता

संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो ।अनुच्छेद 356(1) के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधरित हो सकता है। राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद .घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष(पंजाब में पांच वष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं –

1.जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 392 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2.निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव—

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंवित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हंथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर।

अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं. परन्तु अनुच्छेद 396 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंवित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रुप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3) वित्तीय आपात काल

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो .इसे अनिष्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम वैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभावः-
संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।
इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।
राज्य के समस्त वित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।
संघीय सरकार ,राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।
राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

9.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के विना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं

के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा ।इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श पगाप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे ,लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरुप राष्ट्रपति , राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। किन्तु भारतीय राजनीति में उभरती हुई अनिश्चितता के दौर में राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रपति की इस सक्रियता और महत्ता का कारण ,गठबन्धन की राजनीति और प्रधानमन्त्री पद की गरिमा में तेज गिरावट प्रमुख कारण है।

9.6 उपराष्ट्रपति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 63 के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा ।

योग्यता – उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -
1- वह भारत का नागरिक हो
2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
3-वह राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,(अनुच्छेद ६६)

(उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हे त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती)
उपराष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें-

1. संसद के दोनो सदनो (लोकसभा, राज्यसभा) के सभी सदस्य।

जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विघान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।
उपराष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के के अनुसार उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पॉच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व राज्य सभा के द्वारा पारित संकल्प जो लोकसभा से समर्थित हो ,के आधार पर भी हटाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन का पात्र है।

उपराष्ट्रपति के कार्य- उपराष्ट्रपति के कोई कार्य नहीं होते है। वह राज्य सभा के पड़ें सभापति होते हैं।किन्तु किन्हीं कारणों से राष्ट्रपति पद रिक्त(मृत्यु,त्यागपत्र,महाभियोग द्वारा पद से हटाये जाने पर) होने की दशा में वह राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करते है।

अभ्यास प्रश्न ---

8.राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य

9.राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य

10.राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 61 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य

11.राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य

12.राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 396 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोयाणा करते हैं - सत्य/असत्य

9.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है , क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है -व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरुप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रुप से दिखाई देती है।भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियां प्राप्त है और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है।इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते वयापक रुप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है। साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्रापत है।विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

9.8 शब्दावली

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते है परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:-जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 91 प्रतिशत)

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य

2- 9 वर्ष , 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 9-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 392,

7-आन्तरिक अशान्ति , 8- असत्य, 9- असत्य, 10- सत्य, 11- असत्य,

12- असत्य

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari- 2004- Sterling Publishers Private Limited New Delhi

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1-. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।

2-. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?

3-. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई 10: प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 प्रधानमन्त्री: एक परिचय
10.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
10.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
10.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
10.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना:-

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है क्यों कि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो उसे कुछ स्वविवेकि शाक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमन्ती होता है । प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंत्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेगें कि-

1. संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।
2. सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।
4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
5. मंत्रिपरिषद के विघटन की भी महत्व पूर्ण शक्ति होती है

10.3 प्रधानमन्त्री: एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद ,शासन व्यवस्था का केन्द्र विन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है,जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग ,प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यो में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा ,जिसका प्रधान प्रणानमन्त्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहॉं यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नही है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए विना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरुप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता,किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

1-प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

2-प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

3- प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

4- प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

10.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरुप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ,प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरु को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में काग्रेंस को सफलता मिली और नेहरु जी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त काग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य

गुलजारीलाल नन्दा को ,अस्थायी रुप से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया । इसके पश्चात काग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा , क्योंकि काग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरुप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराज्य का सामना करना पड़ा। काग्रेस ,लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंनें इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का .जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। काग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ .श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरुप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमन्तीं पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गाधी को एक शक्तिशाली नेता के रुप में. राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजबाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वुद्धि की कि काग्रेस के सर्वमान्य नेता के रुप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में काग्रेस की पराज्य हुई और जनता पार्टी को सफलता मिलि। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए. चौधरी चरण सिंह को. तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ. सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु काग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरुप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए. चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रुप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिलि और श्रीमती गॉधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रुप में स्थापित हुई। किन्तु श्रीमती गॉधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या(31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तम्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गॉधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुई। इस

सफलता के केन्द्र में राजीव गॉंधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव. एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्यों कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद प्राप्त किया ।कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही. जून1991 में पतन हो गया ।1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रुप में उभरी। मई 1991 राजीव गाधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को .राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलविहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दकुमार गुजराल की काग्रस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर .घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेवाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव मेंकांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः काग्रस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते है क्यों कि क्षेत्रीय दल. सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते है। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती ।परन्तु 2014और 2019के चुनाव में भाजपा के नेतृत्व में गठबंधन जिसमें भाजपा बहुमत ने स्थितियों में बदलाव लाने का कार्य किया है।

10.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे ,जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में स्थिति काफी हद तक बदल गयी है क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा है। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए ,

विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति ,धर्म, भाषा ,क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की सख्या को महत्व देना पड़ता है।

16.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं ,जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री , मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति ,मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है:

1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध- यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण ,संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रुप से दिखाई देता है।

2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी ,दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं , जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि,फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगनें लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

10.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में में प्रधानमंत्री की नियक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रुप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात प्रधानमंत्री पद पर रहने वाले डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य रहे ।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है ,इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा कें बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है ,क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण ,लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल ,मत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री , राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोकसभा के गठन से कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन
1	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी	1970
2	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी	1977
3	चौधरी चरण सिंह	1979
4	राजीव गॉंधी	1984
5	चन्द्रशेखर सिंह	1991
6	अटल विहारी वाजपेयी	1998
7	अटल विहारी वाजपेयी	1999

यहॉं यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं(जैसे 1977,1989,1991,1996,1998,1999,2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही ,वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है

2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?

3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?

4 . भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थे?

5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

10.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है। यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है।और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यस्था में सम्पूर्ण शासन व्यस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है।

10.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल , राज्यमंत्री ,उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते है।
3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते है

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. श्रीमती इन्दिरा गांधी 5. छः माह

10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?

2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।

3 गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 11: संसद

इकाई की संरचना

1.11 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 भारतीय संसद
11.4 संसद का संगठन
11.5 राज्यसभा
11.6 लोकसभा
11.7 संसद की शक्तियॉ
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हमने यह अध्ययन किया है कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमन्ती होता है । प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंत्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई 11 में हम संसद के संगठन ,कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमे हम यह अध्ययन करंगे कि की किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है । क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है । और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को ,लोक सभा के सामान शक्तियां न होते हुए भी वह महत्त्वपूर्ण है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1.संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे

2.राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

3.लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

4.अंततःकानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

11.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके है कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है! यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाइ गई है! संघीय स्तर के विधान निमा़त्री संस्था को संसद कहते है। राज्य स्तर पर विद्वान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते है। प्रस्तुत इकाई में सघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहॉ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक हे कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते है वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रुप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 119 में स्पष्ट रुप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यो आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 119 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

11.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेउ 119 के अनुसार ष्संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोइ भी विधेयक कानून का रुप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निवा्रचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राजयों की विधानसभाओं के निवा्रचित सदस्य है। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधितव की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लघंन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिय द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेउ 61 में किया गया है।

11.5 राज्य सभा

राज्य सभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उूच्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलबध व्यक्तित्व होंगे । इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से 233+12 = (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रुप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार । यहॉ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बडे हो । हमारे यहॉ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते है। यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यक्रम 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित है-

1. वह भारत का नागरिक है।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो

3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,

4. वह पागल या दिवालिया न हो,

5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाऐंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो,किसी भी प्रदेश में लड सकता है।

2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारीः- राज्य सभा के पदाधिकारी

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है (अनुच्छेद 89) और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रुप में कार्य करते है।

अनुच्छेद 91 के अनुसार सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है। जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यो का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियॉ

1. विधायी शक्तियॉ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियॉ प्राप्त है। साधरण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते है। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रुप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियॉ है परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियॉ प्राप्त है क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते है। वे तभी पारित माने जाऐगें जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियॉ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते है। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा

द्वारा पारित होने केपश्चातराज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रुप में पारित समझा जाएगा, जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियॉ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रुप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते है, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते है। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियो के सन्दर्भ में राज्यसभा,लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियॉ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियॉ भी राज्य सभा की है , जो निम्नलिखित है -

क. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते है।

ख. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित़+मनोनीत) 233+12 भाग लेते है।

ग. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।

घ. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।

ङ. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियॉ है, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित है-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेउ 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।

2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

11.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ चुके है कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते है क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते है। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते है। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता:-

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।
4. वह, पागल या दिवालिया न हो ।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 19116 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता हैं। इस प्रकार 1970,1977,1979,1990,1997,1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते है। यहॉं स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवॉं भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोसधन के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 552 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से । जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते है। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है । परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य है जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधत्व करते है, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है । मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याक्षी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधन के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रुप में कार्य करते है। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रुप में नहीं वरन् लोकसभा के सदस्य के रुप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहॉ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियॉ

हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रुप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रुप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरुप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद में लोकसभा,राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके है कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते है। साथ ही वित्त विधेयक उसी रुप में पारित हो जाता है, जिस रुप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन

रोग सकती है। इसकेपश्चात वह उसी रुप में पारित समझा जाएगा जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।
कार्यपालिका शक्ति- भारतीय संविधान में स्पष्ट रुप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहॉ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते है। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। और सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसकों लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछकर, पूरक पश्न, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते है।
संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियॉ प्राप्त है। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते है और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनो सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करे।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियॉ समान है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

11.11 संसद की शक्तियॉ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियॉ निम्नलिखित है-
1- कानून निर्माण की शक्तियॉ- शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते है। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-
1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेउ 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।
2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद् का गठन करते है।
अनु0 115 (3) के अनुसार मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।
वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियॉ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के

समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियॉ व्यापक है। परन्तु वे अमर्यादित नहीं है क्यों कि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य असत्य /

2.संसद राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है ,। सत्य असत्य /

3.राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य असत्य /

4.लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य असत्य /

5.राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य असत्य /

6.राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य असत्य /

11.राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य है । सत्य असत्य /

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है । क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में सामान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम ६ माह तक रोक सकती है और वित्त

विधेयक को केवल १४ दिन तक रोक सकती है ,इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी ।राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो ,उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। इस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

11.9 शब्दावली

संसद= राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियां निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है ,वरन मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 11. असत्य

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

11.13 निबंधात्मक प्रश्न संसद

1.संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 12:न्यायपालिका:सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 न्यायपालिका
12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन
    12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति
    12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध
    12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय
    12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकारः
12.5 उच्च न्यायालय
    12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारत में किस प्रकार से एकीकृत न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है उसके बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे । इसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्य क्या है ,उसकी अधिकारिता क्या है ? उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है और किस आधार पर इसका अध्ययन करते हुए उसके अगले चरण में हम देखेंगे कि किस प्रकार से यह संविधान की संरक्षक है उसका व्याख्याकार है। यही नहीं नहीं लोकतंत्र में नागरिको के अधिकारों को बहुत महत्व होता है । इस लिए उन अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी अर्थात उसके प्रवर्तन में किसी प्रकार के अवरोध आने पर सर्वोच्च न्यायालय में जाया जा सकता है ।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम-

1) लोक्तंत्रण में स्वतन्त्र न्यायलय के महत्व को जान सकेंगे ।
2) सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों के बारे में जान सकेंगे ।
3) सर्वोच्च न्यायलय को स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने में लिए क्या प्रावधान किये गए हैं ,उसका अध्ययन कर सकेंगे।
4) न्यायिक पुनरावलोकन के अर्थ को जान सकेंगे ।

12.3 न्यायपालिका

शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायापालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कानून के क्रियान्वयन और कानून की व्याख्या और उसकी वैधता, अवैधता की व्याख्या से संबंध रखती है। प्रस्तुत इकाई में हमें न्यायपालिका का अध्ययन करेंगे। लोकतंत्र में तो यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि एक तरफ तो यह व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करती है तो कार्यपालिका के कार्यों का भी संविधान के उपबंधों के अधीन परीक्षण कर उसकी वैधता और अवैधता का निर्णय करती है। साथ ही भारत में न्यायपालिका तो संविधान की रक्षण भी है। जहाँ अस्पष्टता की स्थिति हो, संविधान की मूलभावना के अनुरूप उसकी व्याख्या भी करती है। संविधान के द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों की रक्षा और व्याख्या के गुरूतर दायित्व का निर्वाह भी करती है।

भारत में अमेरिका के समान दोहरी न्यायिक व्यवस्था नहीं है वरन यहाँ पर एकीकृत न्यायपालिका जो पिरामिडाकार में सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय तक आदि संगठित है।

12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन

उच्चतम न्यायालय के गठन के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 224 में किया गया है। संविधान इस बात का प्रावधान करता है कि सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना गठन और उसकी शक्तियों से संबंधित विधान करने का अधिकार संसद को है।

तदर्थ न्यायाधीशः- अनुच्छेद 127 इस बात का उपबन्ध करता है कि यदि उच्चतम न्यायालय में, न्यायाधीशों की गणमूर्ति न हो तो, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से, मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से बैठकों में उपस्थित होने के लिए अनुरोध कर सकते हैं।

अनुच्छेद 128 इस बात का प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय में जज हो सकता है, उससे उच्चतम न्यायालय में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकते है।

12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। इस हेतु राष्ट्रपति, अनुच्छेद 124 (2) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से परामर्श करेंगे। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की स्थिति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अनिवार्य रूप से परामर्श करेंगे।

न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु योग्यताः- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 (3) में इस प्रकार का प्रावधान किया गया है जो इस प्रकार है-

1. वह भारत का नागरिक हो
2. देश के किसी उच्चतम न्यायालय का न्यूनतम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो या
3. न्यूनतम 10 वर्ष किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा हो,या
4. राष्ट्रपति की राय में पांरगत विधिवत्ता हो।

कार्यकालः इस संबध में न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं किया गया है। इनका कार्यकाल 65 वर्ष की उम्र तक है इसके पूर्व वह राष्ट्रपति को संबोधिति हस्ताक्षर से त्याग-पत्र दे सकते है। इसके अतिरिक्त उन्हें 'सावित कदाचार' या असमर्थता के आधार पर संसद के विशेष बहुमत से पारित प्रस्ताव पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से भी पद से हटाया जा सकता है।

महाभियोगः जैसा कि हम ऊपर यह देख चुके है कि अनुच्छेद 124 (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। संविधान के द्वारा प्राप्ति शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम 1968 अधिनियमित किया है। जिसमें न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया इस प्रकार है-

1. सर्वप्रथम इस हेतु राष्ट्रपति से इस हेतु समावेदन करना होगा। यदि प्रस्ताव को लोकसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति और यदि राज्यसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति होनी आवश्यक है।

2. यदि प्रस्ताव लोकसभा में हो तो लोकसभा में अध्यक्ष और यदि राज्यसभा में है तो सभापति आवश्कतानुसार परामर्श किसी से ले सकता है। परन्तु वह प्रस्ताव का स्वीकार/अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा।

3. अध्यक्ष/सभापति यदि प्रस्ताव को ग्रहण कर लेते है तो एक समिति गठित की जायेगी जिसमें तीन सदस्य होंगे-
a. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या कोई अन्य एक न्यायाधीश
b. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों में से कोई एक
c. कोई पांरगत विधिवेत्ता

4. यदि यह तीन सदस्यीय समिति इस प्रस्ताव पर सहमत होती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या असमर्थता से ग्रस्त है तो, समिति प्रस्ताव और अपने प्रतिवेदन को उस सदन में रखती है, जहाँ प्रस्ताव लंबित है।

5. प्रस्ताव पर दोनों सदनों के अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के विशेष बहुमत से यदि पारित हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

6. अन्ततः राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश जारी करता है।

12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध

जैसा कि हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके है कि संविधान के रक्षक उसके व्याख्याकार और नागरिकों के अधिकारों के रक्षक के रूप में न्यायापालिका को बहुमत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने की जिम्मेदारी संविधान के द्वारा

प्रदान किया गया है। ऐसी स्थिति में इतने गुरूतर दायित्व के निर्वहन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि न्यायपालिका को उसके कार्यों में अन्य संस्थाओं (विधायिका,कार्यपालिका) के दखल से स्वतन्त्र रखा जाए। इस बात का ऐहसास भारतीय संविधान निर्माताओं को था इसलिए उन्होंने इस हेतु, प्रावधान किये है, जो इस प्रकार है-

1- संविधान के द्वारा न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के उपरान्त पद से हटाने की प्रक्रिया बहुत ही दुरूस्त है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

2- उच्चतम और उच्च न्यायालय पर होने वाला व्यय भारत की संचित निधि पर पारित है, जिससे कोई दबाव वित्तीय कारकों के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है।

3- सेवाकाल में न्यायधीशों के लिए कोई अलामकारी परिवर्तन (जैसे वेतन, भत्ते कम करना आदि) नहीं किया जा सकता। ऐसा के वित्तीय आपातकाल के दौरान किया जा सकता है न तो उसके पहले और न ही बाद में।

4- किसी न्यायाधीश के द्वारा अपने कर्त्तव्यों के अनुपालन में किये गये आचरण में संसद/राज्यविधान मण्डल में चर्चा नहीं हो सकती।

5- उच्चतम और उच्च न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। किसी न्यायालय को अभिलेख न्यायालय कहने के मुख्यतः दो आधार होते है।

1- जब न्यायालय के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति हो।

2- इसके निर्णय साक्ष के रूप में प्रस्तुत किये जाते है। जब से निर्णय साक्ष के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते है तो ये प्रश्नगत नहीं किये जा सकते, वरन ये तो निश्चयात्मक प्रकृति के होते हैं।

12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार

इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्न विषय आते है-

1. प्रांरभिक अधिकारिता

2.अपीलीय अधिकारिता

3. लेख क्षेत्राधिकार

4.परामर्श अधिकारिता

5.न्यायिक पुनरावलोकन

1- प्रारम्भिक अधिकारिताः- संविधान के अनुच्छेद 131 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को कुछ प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे विषयों पर सुनवाई का प्रांरभिक अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। किसी अन्य न्यायालय को नहीं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रारम्भिक अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय को है-

(अ) संसदीय सरकार और एक राज्य या उससे अधिक राज्यों के अन्य उत्पन्न किसी विवाद के सन्दर्भ में,

(ब) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच उठने वाले विवाद,

(स) दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद जो कि उनके वैधानिक अधिकारों के प्रश्न से संबंधित हो।

2- अपीलीय क्षेत्राधिकारः- सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। जिसे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। निम्नलिखित मामले में सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकार है-

(अ) संवैधानिक मामले में- जब उच्च न्यायालय के किसी निर्णय में संविधान की व्याख्या से संबंधित को विषय हो तो, उसके विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ब) दीवानी मामले में- अनुच्छेद 133 इस बात का प्रावधान करता है कि निम्नलिखित स्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय में, दीवानी मामलों में अपील की जा सकती है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि-

I. मामले में विधि या लोकमहत्व का कोई सारभूत प्रश्न निहित हो,

II. मामलें का निर्णय उच्चतम न्यायालय के द्वारा किया जाना आवश्यक है।

(स) फौजदारी मामले में- अनुच्छेद 134 में उन दशाओं का उल्लेख है जब फौजदारी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

I. जब उच्च न्यायालय के द्वारा किसी दोषमुक्त व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिये जाने का निर्णय दिया गया हो।

II.जब अपने अधीनस्थ न्यायालय से कोई वाद अपने को हस्तान्तरित करवाकर, अभियुक्त को दोषी करार देते हुए मृत्युदण्ड का निर्णय दे।

III.ऐसा तब भी किया जा सकता है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विषय, उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक हो।

3.लेख क्षेत्राधिकारः संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मोलिक अधिकारों का रक्षक भी बनाया गया है। इसी क्रम में नागरिकों के मोलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के तहत मूल अधिकारों के

प्रवर्तन के लिए निम्नलिखित लेख जारी कर सकता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा। इसके सन्दर्भ में हम मौलिक अधिकार के अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं।

4.परामर्शी क्षेत्राधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह किसी विषय में विधि के सारवान प्रश्न शामिल होने की दशा में, आवश्यक समझने पर सर्वोच्च न्यायालय से राय मांग सकता है। जिस विषय की सुनवाई कर न्यायालय अपनी राय दे सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसी राय मांगने पर, न तो सर्वोच्च न्यायालय राय देने के लिए बाध्य है, और न ही, सर्वोच्च न्यायालय यदि राय दे तो राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य हैं।

5.न्यायिक पुनरावलोकन- न्यायपालिका लोकतंत्र में नागरिक स्वतन्त्रता और अधिकारों के रक्षक के रूप में अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक तभी निर्वाह कर सकता है, जब उसे कुछ बुनियादी अधिकार हो, जिसमें न्यायिक पुनरावलोकन भी एक है। इसकी शुरूआत अमेरिका में हुई है।

न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

12.5 उच्च न्यायालय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 214 में इस बात का प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। परन्तु, यदि संसद आवश्यक समझे तो वह दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो से अधिक राज्यों और किसी संघशासित क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना की जा सकती है।

संगठन -अनुच्छेद 216 में यह प्रावधान है कि एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर (जो राष्ट्रपति आवश्यक समझे) उच्च न्यायालय का गठन होगा।

अर्हताएं (योग्यताएं)- इस संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 217 में किया गया है-

1- वह भारत का नागरिक हो।

2- वह भारत में कम-से-कम 10 वर्ष कोई न्यायिक पद ग्रहण कर चुका हो या

3- उच्च. न्यायालय का कम-से-कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

नियुक्ति-इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के अतिरिक्त, उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श करता है।

पदावधि-उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र तक अपना पद ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त वह राष्ट्रपति को समय से पूर्व त्यागपत्र दे सकता है।

तथा साबित कदाचार और असमर्थता के आधार पर जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। वैसे ही इन्हें भी हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण- अनुच्छेद 222 के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश से परामर्श पर किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर सकता है।

12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय के निम्नलिखित क्षेत्राधिकार प्राप्त है-

1- अपीलीय- अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलीय अधिकार है।

2- प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार- अनुच्छेद 226 के अनुसार राजस्व संग्रह और मूलअधिकारों के प्रवर्तन हेतु, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है।

3- अन्तरण के अधिकार- अनुच्छेद 228 में प्रावधान है कि यदि उच्च न्यायालय को प्रतीत हो कि उसके किसी अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले में संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न निहित है तो उस मामले को अपने पास मंगाकर उस पर दो निर्णय दे सकता है।

4- अधीक्षण का अधिकार- अनुच्छेद 227 के तहत, उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है।

5- अनुच्छेद 231 में यह प्रावधान किया गया है कि जहाँ पर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय है वहाँ उन क्षेत्रों तक अन्यथा जिस राज्य के लिए उच्च न्यायालय होगा, वहाँ तक उसकी अधिकारिता होगी।

अभ्यास प्रश्न

1.सबसे बड़ा उच्च न्यायलय कौन सा है ?

2.सर्वोच्च न्यायलय का मुख्यालय कहाँ है ?

3. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश की नियुक्ति कौन करता है ?

4. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश को किस आधार पर उनके पद से हटाया जा सकता है ?

12.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के आधार पर हम पर हमें भारत में न्यायपालिका की संरचना का अध्ययन करने को मिला है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से भारत में एकीकृत न्यायपालिका है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायलय है । जो जहा एक तरफ संविधान की संरक्षक है तो दूसरी तरफ नागरिकों के मौलिक अधिकारों की भी

संरक्षक है। जहाँ पर संविधान के किसी भाग को स्पष्ट समझने में किसी प्रकार की समस्या होती है तो वहाँ भी सर्वोच्च न्यायलय संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत के आधार पर व्याख्या करने का कार्य भी करती है। इसके साथ ही न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए व्यस्थापिका के द्वारा निर्मित कानूनों का और कार्यपालिका के कृत्यों का परीक्षण संविधान के उपबंधों के आधार पर करती है ,यदि उन्हें संविधान के उपबंधों के विपरीत पाती है तो उन्हें ,संविधान के उल्लंघन की मात्रा तक शून्य घोषित करती है। इस प्रकार से भारत में न्यायपालिका शासन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है।

12.7 शब्दावली

न्यायिक पुनरावलोकन - न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.इलाहाबाद , 2.नई दिल्ली ,3.राष्ट्रपति ,4.साबित कदाचार ,असमर्थता

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

2.त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

3.भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

4.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

2.भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

3.The Constitution of India – J.C. Jauhari-2004-Sterling Publishers Private Limited New Delhi

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये।

2.संविधान और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायलय के कार्यों पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 13: केन्द्र-राज्य सम्बन्ध

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
13.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति
13.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर
13.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर
13.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर
13.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु
13.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
13.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
13.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने व अन्तिम स्वीकृत हेतु केन्द्र का अनुमोदन आवष्यक
13.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध
13.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति
13.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव
13.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार
13.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति
13.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बरखास्तगी
13.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना
13.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरूद्ध जॉच आयोग
13.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण
13.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध
13.5.1 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संगहित तथा विनियोजित शुल्क
13.5.2 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर
13.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर
13.5.4 संघ के प्रयोजन के लिए कर
13.5.5 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर
13.5.6 राजस्व में सहायक अनुदान
13.5.7 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध
13.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण
13.7 वित्तीय संकटकाल
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.11 संदर्भ ग्रन्थ
13.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत एक परिसंघ है और उसका संविधान परिसंघीय है। परिसंघ में शासन के दो स्तर होते हैं। सभी शक्तियॉं इन स्तरों में विभाजित की जाती हैं। संघ, अठ्ठाइस राज्य और सात संघ राज्य क्षेत्र सभी संविधान से शक्तियां प्राप्त करते हैं। राज्यों को शक्ति संघ नहीं प्रदान करता है। सबकी शक्ति का एक ही स्रोत है और वह है संविधान। संविधान में सभी शक्तियों का विभाजन संघ और राज्यों के मध्य किया गया है।

प्रत्येक परिसंघीय राज्य व्यवस्था का यह चिन्ह् और आवश्यक लक्षण है कि शक्तियों का विभाजन और वितरण राष्ट्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया जाता है जिन शक्तियों को इस प्रकार विभाजित किया जाता है वे साधारणतया चार प्रकार की होती है ;क- विधायी , ख- कार्य पालिका ,ग- वित्तीय , घ- न्यायिक। अतः संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध 2.केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध 3.केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कर सकेगें।
2) केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रषासनिक शक्तियों के विभाजन की विवेचना कर सकेंगे।
3) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4) केन्द्र राज्य सहयोग प्रापत करने के विभिन्न उपयों की व्याख्या कर सकेंगे।

13.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध

हमारे संविधान के अनुच्छेद 245 से 255 में केन्द्र राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों के बारे में बताया गया है। संघ व राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

1. संघ सूची: इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है। जिसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 100 विषय है। जिनमें से कुछ प्रमुख है- रक्षा, वैदेशिक मामले, देशीकरण व नागरिकता, रेल, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खाने व खनिज आदि।

2.राज्य सूची: इस सूची में साधारणतया वो विषय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामन्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। इस सूची में 61 विषय है, जिनमें से कुछ प्रमुख है- पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, सिचाई आदि।

3.समवर्ती सूची: इस सूची में सामान्यतया वो विषय रखे गये हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनो ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि समवर्ती सूची के विषय पर संघीय संसद तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो तो सामान्यतयः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 52विषय है। जिनमें से कुछ प्रमख ये है- फौजदारी, निवारक बिरोध, विवाह तथा विवाह विच्छेद दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, आर्थिक और समाजिक योजना और सामाजिक बीमा, पुर्नवास और पुरातत्व आदि।

अवशेष विषय: आट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाईयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की भांति अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शक्तियों के बटवारे में केन्द्र सरकार की तरफ झुकाव अधिक है।

13.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

सामान्यतया संविधान द्वारा किये गये शक्ति विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा, नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघ सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा। लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं।

13.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्य सभा द्वारा पुनः प्रस्ताव स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी।

13.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। अनुच्छेद 250 इस घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत चलते रहेंगे।

13.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाय, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाएगा। राज्यों के विधानमण्डल न तो इन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्ण रूप से समाप्त कर सकते हैं।

13.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

अनुच्छेद 253: यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की संधि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

13.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया जाता है इस स्थिति में राज्य की समस्त विधायी शक्तियां संसद द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार के अधीन इस्तेमाल की जाती हैं इस अधिकार के तहत संसद किसी भी सूची के किसी भी विषय पर विधायन बना सकता है।

13.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने व अन्तिम स्वीकृत हेतु केन्द्र का अनुमोदन आवष्यक

उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304ख के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं जिनके राज्य विधान मण्डल में प्रस्तावित किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या उससे बाहर, वाणिज्य या मेल जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

13.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र व राज्यों की कार्यपालिकायें अलग-अलग होती हैं। जहॉं तक विधान बनाने का प्रश्न है दोनों के क्षेत्र को तय करना कठिन नहीं है क्योंकि सप्तम अनूसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। प्रशासनिक मामलों में बहुत सी कठिनाइयां सामने आती हैं कुछ मामले ऐसे होते हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह निपटाया जा सकता है और कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके लिए बडे संगठन की आवश्यकता होती है जिससे क्षमता और मितव्ययता संभव हो सके। इसके अतिरिक्त परिसंघ की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उनके झगडे तय करना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 256 से 263 तक कुछ उपबन्ध किए हैं।

13.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता है। इस प्रावधान का यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक शक्ति को इस प्रकार प्रयोग में लाना होता है। कि वह संघ सरकार की प्रशासनिक शक्ति को प्रतिबन्धित न करें। संघ सरकार आवश्यकतानुसार इस प्रकार के र्निदेश भी राज्य सरकार को दे सकती है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार राज्यों को निम्नलिखित विषयों पर निर्देश दे सकती है-

1.राष्ट्रीय तथा सैनिक महत्व के यातायात तथा सूचना के साधनों का निर्माण और उनकी देखभाल करना।

2.राज्य में विद्यमान रेलमार्ग की सुरक्षा करना। तो भी जब कभी किसी यातायात के साधन के निर्माण अथवा देखभाल करने में अथवा रेलमार्ग की सुरक्षा करने में राज्य सरकार को अतिरिकत व्यय करना पड़ जाता है तो भारत सरकार उसका भुगतान राज्य को कर देती है। और यदि अतिरिक्त व्यय की राशि के लिए कोई मतभेद हो जाता है तो भारत को मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ इसका निर्णय करता है। (अनुच्छेद 257) ।

3.परिगणित जनजातियों के हित के लिए बनाई योजनाओं को लागू करना (अनु. 339) ।

13.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव

संघ सरकार को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत समान्य तथा असामान्य अवस्थाओं में जो निर्देश देने की शक्ति दी गई है उसके परिणामस्वरूप यह भी बात सामने आती है कि यदि संविधान के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार नहीं करती तो राष्ट्रपति यह मान सकता है कि राज्य सरकार संविधान के अनु. 365 के अन्तर्गत प्रावधान के अनुसार कार्य करने के समर्थ नहीं है। जैसे ही यह घोषणा की जायेगी, राज्य सरकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत बरखास्त कर दी जायेगी। इस आधार पर राज्य की विधानसभा या तो निलम्बित की जा सकती है या भंग की जा सकती है।

13.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता यह है कि यह सहकारी संघ प्रणाली पर आधारित है। भारत सरकार के 1935 के विधान के समान यह संघ को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रतिबन्ध सहित अथवा प्रतिबन्ध रहित कुछ कार्य राज्य सरकरों को सौंप दे अथवा राज्य सरकारों को स्वीकृति से इसके अधिकारियों को सौंप दे (अनु. 258)।

इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में तो राज्य सरकारों की अनुमति के बिना भी लोकसभा कानूनन अधिकार दे सकती है और राज्य के अधिकारियों को कार्य सौंप सकती है। जो भी ऐसे मामलों में यदि राज्य सरकार को कुछ अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है तो उसको भारत सरकार अदा करती है। यदि होने वाले अतिरिक्त व्यय के विषय में भारत सरकार और राज्य सरकारों में मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार जनगणना करवाना, चुनाव के लिए मत-सूची तैयार करवाना और चुनाव करवाना ये तीनों काम राज्य सरकारों को सौंपे हुए हैं।

13.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

मूलतः संविधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके अनुसार एक राज्य सरकार कुछ कार्य भारत सरकार के किसी अंग को सौंप सकें। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि कभी ऐसी भी घटना हो सकती है। केन्द्र सरकार ने जब उड़ीसा सरकार की ओर से हीराकुण्ड बाँध का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि इसकी लागत राज्य सरकार के खातों से खर्च होगी तो लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक ;ऑडिटर जनरल ने आपत्ति की। उसकेपश्चात1956-का सातवां संविधान संशोधन पारित किया गया और संविधान में अनुच्छेद 258 ए जोड़ दिया गया। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह सप्रतिबन्ध अथवा अप्रतिबन्ध रूप से कुछ कार्य सौंप दे जिससे राज्य की प्रशासनिक शक्ति संघीय सरकार के अधिकारियों के पास पहुँच जाये। परन्तु यह सब भी भारत सरकार की अनुमति से ही हो सकता है।

13.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बर्खास्तगी

राज्यपाल किसी भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण करता है। वस्तुतः वे शुद्ध रूप से संघीय सरकार की दयाभाव पर निर्भर हैं। इसलिए अनेक बार उन्हें केन्द्रीय सरकार के दबाव के कारण मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करने तथा पदच्युत करने और विधानसभा की बैठक बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का कर्तव्य निबाहना पड़ता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को निश्चित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करने के अधिकारों का प्रयोग केन्द्र में सत्ता दल के हितों को ध्यान में रखते हुए करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत हद तक केन्द्र राज्यों की स्वायत्ता को राज्यपालों के द्वारा नष्ट कर देता है।

13.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। यद्यपि इसमें यह अवश्य है कि यदि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी बन गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान में यि गये प्रावधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है। इस अनुच्छेद का केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी ने पुनः-पुनः प्रयोग पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया और दूसरी और राज्यों की स्वायत्ता को नष्ट करने के लिए किया। जो भी राज्य सरकार अपने अनूकूल न दिखाई दी उसे ही पदच्युत कर दिया गया तथा विधानसभाओं को या तो निलम्बित कर दिया गया अथवा केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के हितों को ध्यान में रखते हुए उसे भंग कर दिया गया। उस अनुच्छेद ने वस्तुतः राज्य सरकारों को प्रशासन की दृष्टि से सर्वथा केन्द्र के अधीन बना दिया।

13.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरूद्ध जॉच आयोग

एक दूसरा उपाय जिसके द्वारा संघ सरकार राज्य सरकारों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है, वह है केन्द्र सरकार द्वारा मुख्यमंत्रियों के भूल-चूक या अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उनके विरूद्ध जॉच-आयोग बैठाना। इस प्रकार का जॉच आयोग सबसे पहले पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों के विरूद्ध संघ सरकार ने 1963 में दास आयोग के नाम से बैठाया था। इसके उपरान्त इस प्रकार के जॉच आयोग बैठाए गए जैसे 1972 में पंजाब में सरकार प्रकाश सिंह बादल के विरूद्ध, 1976 मे तमिलनाडु में करूणानिधि के विरूद्ध सरकारिया आयोग, आन्ध्र में वेंगल राव के विरूद्ध विया दलाल आयोग, कर्नाटक में देवराज उर्स के और हरियाण में बंसी लाल के विरूद्ध 1978 में, और त्रिपुरा के मुख्यमन्त्री एस. एस. सेन गुप्त के विरूद्ध 1979 में बर्मन आयोग। 1981 में संघ सरकार ने तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट घोटाले के विषय में जांच करने लिए प्रे आयोग की नियुक्ति की थी।

13.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

संविधान में राज्यों की सेवाओं और केन्द्र सेवाओं का प्रावधान है। तो भी कुछ सेवाए ऐसी हैं जो अखिल भारतीय हैं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा ;इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, और भारतीय पुलिस सेवा ;इण्डियन पुलिस

सर्विस, केन्द्र सरकार इसके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस प्रकार की अखिल सेवा के बनाने की सिफारिश करें। केन्द्र की अनुमति के बिना उन पर कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

13.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध

कोई भी सरकार बगैर धन के सुचारू रूप से नहीं चल सकती है एक परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों की स्वतंत्रता आवश्यक होती हा। यह स्वतंत्रता तभी रह सकती है जब राज्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था हो। प्रायः सभी मुख्य परिसंघों में वित्तीय व्यवस्था की राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रयाग किया जाता है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263-293 तक वित्तीय सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। अनुच्छेद 265 के उपबन्ध प्रत्यक्ष तथ अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के करो पर लागू होते हैं। अनुच्छेद 266 के अनुसार भारत सरकार प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया गया धन तथा उद्योग के प्रतिदान में प्राप्त सभी धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी और इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया धन तथा उधार के प्रतिदान में प्राप्त धनों की एक संचित निधि बनेगी जो राज्य की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी। भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन लोक लेखे ; में जमा किया जाऐगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 267 में भारत व राज्यों के लिये आकस्मिकता निधि की व्यवस्था है जो अपूर्व दृष्ट ; व्यय के लिए क्रमश‘ राष्ट्रपति व राज्यपालों के हाथ में रखी जाएगी।

भारतीय संघ में संघ और राज्यों के बीच राजस्व वितरण की निम्नलिखित पद्धति अपनाई गई है।

13.5.1 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संगहित तथा विनियोजित शुल्क

अनुच्छेद 268 में यह उपलब्ध है कि ऐसे मुद्रा शुल्क औषधीय और प्रसाधनीय पर ऐसे उत्पादन शुल्क जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किये जायेगे परन्तु संघ राज्य क्षेत्र के भीतर उदग्रहीत ;समअपमकद्ध किए जाने वाले शुल्क भारत सरकार द्वारा और राज्यों के बीच उदग्रहीत शुल्क राज्य सरकारों द्वारा संग्रहीत किये जाएंगे। जो शुल्क राज्यों के भीतर उदग्रहीत किए जाएंगे वे भारत की संचित निधि में जमा न होकर उस राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएगें।

13.5.2 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल समुद्र तथा वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथ यात्रियों पर सीमान्त कर रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान प्रदान पर मुद्राक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य से माल के क्रय विक्रय पर कर।

13.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

कुछ कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं किन्तु उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आयकर का विभाजन संघीय भू भागों के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आयकर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी जीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पान शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

13.5.4 संघ के प्रयोजन के लिए कर

अनुच्छेद 271 में यह उपबन्ध है कि संसद 269 और 270 में निर्दिष्ट शुल्कों या करों की अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है। अधिभार से हुई सारी आय भारत की संचित निधि का भाग होगी। संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि।

13.5.5 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

अनुच्छेउ 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। इससे प्राप्त आय राज्य या उसकी नगर पालिकाओं, जिला वार्डों या सथानीय बोर्डों के हितों में प्रयोग की जाएगी। राज्यों के मुख्य राजस्व स्रोत हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर वाहनों पर चुंगी कर आदि।

13.5.6 राजस्व में सहायक अनुदान

अनुच्छेद 273 के तहत पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान पैदा करने वाले राज्यों- बंगाल, उड़ीसा, बिहार व असम को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के किए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

13.5.7 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संपत्ति निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋृण ले सके। ऋृण लेेने का अधिकार राज्यों को भी प्राप्त है परन्तु वे विदेशी से उधान नहीं ले सकते। यदि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कंही से कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है।

13.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने का ढंग एवं उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संसद राज्यों की आय पर अपना नियंत्रण रखती है।

13.7 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकाल की स्थिति में राज्यों का आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1.अनुच्छेउ 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। सत्य असत्य/

2.अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के किए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। सत्य असत्य/

3.भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। सत्यअसत्य/

4.संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। सत्यअसत्य/

13.8 सारांश

जिस प्रकार से एक गाड़ी को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों, के मध्य समन्वय का होना आवश्यक है उसी प्रकार से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर समन्वय ही देश को विकास के क्षेत्र में ऊचॉइयों पर ले जा सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात आरम्भिक वर्षो में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की भावना थी किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनो के मध्य सम्बन्धों में दरारें दिखनी लगीं। इसका एक कारण तो यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी में अपने देश की सरकार के प्रति चरम सीमा पर उत्साह था तथा दूसरा कारण यह था कि ज्यादातर राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य बड़े भाई तथा छोटे भाई जैसा रिश्ता था अतः तनाव न के बराबर था। तनाव उत्पन्न हाने का मुख्य कारण राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय होना था। धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य तनाव बढ़ाने के मुख्य कारणों में राज्यपाल की भूमिका भी मुख्य रही है। क्योंकि राज्यपाल सरकारों में संविधानिक प्रमुख हाने के

स्थान पर केन्द्रीय एजेन्ट के रूप में ज्यादा कार्य करने लगे हैं। तनाव का एक और मुख्य कारण अखिल भारतीय सेवायें हैं जिसके कि सदस्यों को नियन्त्रित करने वाली केन्द्र सरकार होती है जबकि वो कार्य राज्य सरकारों में करते है और बगैर केन्द्र की अनुमति के उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही नही कर सकती है। तनाव का एक अन्य कारण वित्त भी है। कुछ सरकारें केन्द्र से मिले धन को राज्य के विकास में न लगाकर अपने राजनीतिक जनाधार को बढ़ाने में लगी रहती है। जिसे कि केन्द्र द्वारा अक्सर ही विरोध प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र राज्यों के मध्य सम्बन्ध केन्द्र में प्रधानमंत्री की स्थिति के ऊपर भी निर्भर करता है। 1990 के पश्चात केन्द्र में ज्यादातर सरकारें कमजोर रही हैं उसका सबसे बड़ा कराण साक्षा सरकार का होना रहा है। केन्द्र में सरकार राज्यों के क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनायी जा रही है। जिसकी कि वहज से समर्थन देने वाली पार्टी के राज्यों में केन्द्र सरकार ब्लेक मेल होती रहती है। इसके उदाहरण हमको दिन प्रतिदिन देखने को मिलते रहते हैं। यदि हमको वास्तव में अपने देश को तरक्की की राह पर ले जाना है तो केन्द्र सरकारों का राज्यों सरकारों के मध्य विवाद रहित तथा स्वार्थ रहित सम्बन्ध होने चाहिये।

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रषासनिक, विधायी तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है और यह विभाजन संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को बताया गया है। स्पष्ट विभाजन के बावजूद भी विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कठिनाइयॉं आती हैं। यह कठिनाइयॉं वहॉं अवष्य उत्पन्न होती हैं जहॉं केन्द्र तथा राज्यों में अलग-अलग पार्टी की सरकारें होती हैं। देष की तरक्की के लिए केन्द्र तथा राज्यों के मध्य मधुर सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवष्यक है।

13.9 शब्दावली

अनुच्छेद 352	:	राष्ट्रीय आपात काल
अनुच्छेद 356	:	राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता
अनुच्छेद 360	:	वित्तीय आपात काल

अखिल भारतीय सेवायें : भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.भारत का संविधान: ब्रज किषोर शर्मा , 2008ए प्रेटिंस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।

2. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फाडिया, 2002ए साहित्य भवन पब्लिकेषन आगरा।

3.भारतीय प्रशासन : प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।

4.इंडियन एडमिनिस्ट्रेसन डा. बी. एल. फडिया, डा. कुलदीप फडिया 2007ए साहित्य भवन पब्लिकेषन आगरा।

13.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.इंडियन एडमिनिस्ट्रेसन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
2.इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेसन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।

2.भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001ए यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

2.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों पर प्रकाष डालिए।

3.केन्द्र तथा राज्यों में मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

4.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवाद के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई 14: राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 राज्यपाल
14.3.1 राज्यपाल का कार्यकाल
14.3.2 राज्यपाल की शक्तियां और कार्य
14.3.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
14.3.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
14.3.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
14.4 मंत्रीपरिषद और मुख्यमंत्री
14.4.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
14.4.2 मुख्यमंत्री के कार्य
14.4.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
14.4.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
14.5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

भारत में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1) राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
2) राज्यपाल की शक्तियों और कार्यो की जानकारी ले सकेंगे।
3) राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
4) राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों को समझ सकेंगे।
5) राज्य की राजनीति में राज्यपाल की भूमिका को समझ सकेंगे।
6) तुलनात्मक दृष्टि से राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्तियों की जानकारी लेंगे।
7) मुख्यमंत्री और विधानसभा के रिश्तों की जानकारी लेंगें।

14.3 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते है। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद इत्यादि होते है।

14.3.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है । वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नही है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है लेकिन पद के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते है। एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

14.3.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ है जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है:-

कार्यकारिणी शक्तियाँ

1.राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है ।

2.महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।

3.राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।

4.यद्यपि राज्यपाल को उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।

5.यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नही हो सकता तो विधान सभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।

6.यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्य पाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान,समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो।

विधायनी शक्तियां

राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधान सभा को भी भंग कर सकता है।

राज्यपाल को विधान सभा और विधान परिषद के सत्रों को अलहदा अथवा संयुक्तरूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है। राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-

1.विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
2.या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
3.या वित्त विधेयक को छोडकर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुर्नविचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुर्नविचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं।
4.वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है, और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस संदर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नही है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलो पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

1.ऐसा विषय जिस से सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या

2.राज्यपाल ऐसे विषय से संबन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।

राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है।

राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा या फता को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नही है।

आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बडी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ-न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करें कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। संभव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरूद्ध हो। उदाहरण के लिए -

1.जब राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।

2.राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।

3.राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी है। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते है।

14.3.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है । यदि मन्त्रि परिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पत रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधान सभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधान सभा में शासक दल में टूट फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो। तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है। क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है । इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलो की सरकारे हो, तब वक केन्द्र के हितो को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नही होता। ऐसी स्थिति में पीडित दल न्यायालय की शरण लेता है। राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कडी आलोचना हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच टकराव बढता है और संघात्मक सरंचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

14.3.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक जो केन्द्र मे भी है और राज्यों में भी । केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विषम स्थिति है क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है ।सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञो ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद 3146 का अक्सर दुरूपयोग करके राज्यपाल ने स्वंय को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम एक कुशल राजनीति अधिक सिद्ध किया है। इससे राज्य में अस्थिरता, दल- बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता हैं।उदाहरण के लिये 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गई जबकि 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गई। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया। 1980 में काग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया , और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया।

14.3.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ उस से राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता। राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान है । अनुच्छेद 1149 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा,अपनी पूरी योग्यता से संविधान औॅर कानून की रक्षा करेगा, और राज्य के लोगों की सेवा में स्वंय को समर्पित करेगा। इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से संबन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है।

उधर अनुच्छेद 163(1)स्पष्ट करता है कि अपने कार्यो के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पापदन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा।

अनुच्छेद 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराऐं नही हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असंभव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वंय ऐसी परिस्थितियॉ पैदा करते है जहॉ राज्यपाल को बडे कदम उठाने पडते हैं।

14.4 मन्त्रिपरिषद और मुख्यमन्त्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यो के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधान सभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का

कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

14.4.1 मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमन्त्री स्वंय अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के संदर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्य मंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैः

(अ) मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से संबन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।

(आ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे मुहैय्या कराये तथा

(इ) राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।

मुख्यमन्त्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधान सभा को भंग करने की सिफारिश ,राज्यपाल से कर सकता है।

14.4.2 मुख्यमन्त्री के कार्य

शक्तियों और कार्यो की दृष्टि से मुख्यमन्त्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्य मंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्य मंत्री की सारी शक्तियॉ और कार्य मंत्री परिषद में निहित है जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढाती है और कानून पास हो जाते है तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित है यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहिचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका को सम्बोधित करता है तथा संदेश भेजता है परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधान सभा को बर्खास्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

14.4.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते है और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक म्ंात्री विधान सभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरूद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधान सभा के सदस्य सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधान सभा मे पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते है। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते है और क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 142वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधान सभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरूद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रि मण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी

स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

14.4.4 मुख्यमन्त्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमन्त्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते है । ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

14.5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कडवाहट रहती है। इस कडवाहट का कारण हैं दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है । जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती है ,तब राज्यपाल और मुख्यमन्त्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली जुली सरकारें है वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उडीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 06 दिस्मबर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर कानूनी थी क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में केंद्र सरकार का फैसला था औचित्यपूर्ण था क्योंकि बर्खास्तगी का आधार ''धर्म निरपेक्षता'' था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमन्त्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमन्त्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी अयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को

अंतर्राज्यपरिषद ने दिसमबर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमन्त्री बनाये गये, चुनाव लडा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है।

अभ्यास प्रश्न:

1.राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है ?

2.राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?

3.राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?

4.भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?

14.राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है ?

6.राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?

7.दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?

14.6 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी, राज्य में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है-राज्यपाल जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमन्त्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ है वह संवैधानिक है लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है ,इसलिए वह अधिक सशक्त है।

मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-3146 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। उ0प्र0 के प्रथम मुख्यमंत्री पं0 गोविंद वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बडी गरिमा का पद है। उदाहरण उ0प्र0 की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

14.7 शब्दावली

कन्वेंशन	परम्परा
रेमीशन	सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना
रेपरीव	सज़ा माफ करना या टालना
डिसक्रीशन	छूट की स्वतंत्रता
रेस्पाइट	सज़ा में राहत देना

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.राष्ट्रपति 2. 35 वर्ष 3. अनुच्छेद 356 4.संघात्मक 5.मुख्यमंत्री 6.राज्यपाल 7. 52वे संवैधानिक संशोधन

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

दुबे, एस0एन0	भारतीय संविधान और राजनीति
माहेश्वरी, श्रीराम	स्टेट गवर्नमेंटस इन इण्डिया
पाण्डे, लल्लन बिहारी	दि स्टेट एक्ज़ीक्यूटिव
पायली, एम0वी0	इण्डियाज़ कान्सटीटयूशन

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्रप्रतापसिंह

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई 15: राज्य विधान मंडल

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 राज्य विधान मंडल
15.3.1 राज्य विधान परिषद्
15.3.2 राज्य विधान सभा
15.3.3 राज्य विधान मण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ
15.3.3.1 विधायी शक्तियाँ
15.3.3.2 कार्यपालिका शक्तियाँ
15.3.3.3 वित्तिय शक्तियाँ
15.4 सारांश
15.5 शब्दावली
15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.9 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 14 में हमने राज्यपाल के बारे अध्ययन किया है। जिसमें यह देखा है कि राज्य में राज्यपाल की जो शक्तियाँ है वह संवैधानिक है लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है ,इसलिए वह अधिक सशक्त है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। राज्यपाल का पद बडी गरिमा का पद है। राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

अब हम इस इकाई में राज्य विधान मंडल के बारे में अध्ययन करेंगे जिसमें यह देखेंगे कि राज्यों में भी संघ का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। इस लिए राज्य में विधान मंडल की वही भूमिका है जो संघ में संसद की है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1) यह जानेगे कि राज्य विधान मंडल की संरचना किस प्रकार की गयी है।
2) यह समझ सकेंगे कि विधान सभा के संरचना किस प्रकार होती है।
3) अंततः हम विधान मंडल की शक्तियों का अध्ययन कर सकेंगे।

15.3 राज्य विधान मंडल

भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यह न केवल संघ के स्तर पर वरन् राज्य के स्तर पर अपनाया गया है। राज्य विधानमण्डल में दो सदन होते है। विधान परिषद्- जो कि उच्च सदन है, जो परोक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने के साथ मनोनीत किये जाते है, जबकि विधानसभा, जिसे निम्न सदन भी कहते है। इसे जनप्रतिनिधि सदन भी कहते है क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, तेलंगाना, एवं आंध्रा प्रदेश, इन पाँच राज्यों में विधान परिषदें सृजित हैं।

15.3.1 राज्य विधान परिषद

विधान परिषद् की संरचना-संविधान के अनुच्छेद 171 के अनुसार राज्य विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। लेकिन किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। विधानपरिषद् के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचन मंडल द्वारा किया जाता है। इसका गठन इस प्रकार से होता है-

1- समस्त सदस्यों का एक तिहाई भाग नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और स्थानीय प्राधिकारियों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचन मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

2- समस्त सदस्यों के बारवें भाग के बराबर (1/12) का निर्वाचन तीन वर्ष के स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण सदस्यों के द्वारा।

3- सदस्य न्यूनतम तीन वर्ष से शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों के द्वारा जो (1/12) माध्यमिक पाठशाला की शिक्षण संस्थाएं न हो।

4- एक तिहाई सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा।

5- अनन्ततः समस्त सदस्यों के छठे भाग के बराबर राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जाता है जो साहित्यिक, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्याति उपलब्ध व्यावहारिक अनुभवी हो।

एम॰वी॰पायली के अनुसार कहा जा सकता है कि राज्य विधानसभा की रचना लोकसभा के ढाँचे पर है तथा विधान परिषद की राज्यसभा से समानता है।

विधान परिषद् की अवधिः- संसदीय परम्परा के अनुरूप और राज्य सभा के समान विधान परिषद् का भी विघटन नहीं होता है। इनके तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पर सेवानिवृत्त होते है।

इसलिए सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। परन्तु यदि मृत्यु, त्याग-पत्र आदि कारणों से आकास्मिक रिक्ति की दशा में उस पद हेतु जो सदस्य निर्वाचित होगा वह शेष अवधि के लिए होगा न कि 6 वर्ष के लिए।

सदस्यता के लिए अर्हताः- विधान मण्डल के दोनों में से किसी भी सदन के सदस्य होने के लिए निम्न अर्हताएं होना आवश्यक है-

1- वह भारत का नागरिक हो।
2- विधानपरिषद् के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष और विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए।
3- उसके पास वे अर्हताए भी हो जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करे।

निरर्हताः- इसके संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 191 में किया गया है-
1- केन्द्र या राज्य के अधीन लाभ का पद धारण करने की स्थिति में।
2- यदि वह पागल हो।
3- यदि वह दिवालिया हो।
4- जब उसने विदेशी राज्य की नागरिकता ले ली है

अनुच्छेद 190 में प्रावधान है कि कोई सदस्य एक साथ मंत्रीमंडल के दोना सदनो का सदस्य नहीं हो सकता। अनुच्छेद 190 (2) यदि कोई सदस्य दो या अधिक राज्यों के विधान मण्डल सदस्य हो जाता है तो उसे 10 दिन के भीतर एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमण्डल से त्याग-पत्र देना होगा।

अन्यथा वह कही का सदस्य नहीं रहेगा। 190 (4) में यह प्रावधान है कि बिना सदन की अनुमति के यदि कोई सदस्य 60 दिन तक सदन से अनुपस्थित रहता है तो सदन के स्थान को रिक्त घोषित कर देगा।

एक महत्वपूर्ण तथ्य और स्पष्ट करना आवश्यक है कि यदि किसी सदन के सदस्य के निरर्हता का प्रश्न उठता है तो इस संबंध में राज्यपाल निर्वाचान आयोग की राय के अनुसार कार्य करना होगा। अनुच्छेद 192 (2)

विधानपरिषद् के पदाधिकारीः- विधानपरिषद् अपने सदस्यों में से सदन के कार्य के सुचारू संचालन हेतु सभापति और उपसभापति का चुनाव करते है। जो सदन का सदस्य बने रहने तक अपने पद पर बने रहते है। इसके पूर्व दोनों एक दूसरे को त्याग-पत्र देकर पदमुक्त हो सकते है तथा सदन यदि 14 दिन की पूर्व सूचना देकर बहुमत के समर्थन से पद से हटा सकती है।

गणपूर्तिः- यह प्रावधान है कि दो बैठकों के बीच छः माह से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। सदन की कार्यवाही तभी प्रारम्भ हो सकती है जब सदन के सदस्यों का 10 प्रतिशत अवश्य उपस्थित हो तथा यह संख्या 10 से कम न हो।

15.3.2 राज्य विधान सभा

जैसा कि हम यह स्पष्ट कर चुके है कि यह जनप्रतिनिधि सदन है। क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है। विधान सभा के सदस्यों की संख्या 500 से अधिक नहीं हो सकती और 60 से कम नहीं हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 333 में यह प्रावधान किया गया है कि यदि राज्यपाल की राय में आंग्तक भारतीय समुदाय को विधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो उस समुदाय से एक व्यक्ति को वह मनोनीत कर सकता है।

अनुच्छेद 173 के अनुसार, विधान सभा के सदस्यों की अर्हताः-
1.वह भारत का नागरिक हो,
2.वह 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
3.वह भारत सरकार या किसी राज्य के अधीन लाभ के पद पर न हो,
4.संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन विधि निर्धारित शर्तों को पूर्ण करता हों,
5.वह अन्य निर्धारित शर्तें पूर्ण करता हो, अर्थात वह दिवालिया, पागल न हो एवं उसने अन्य विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा व्यक्त न की हो।

विधान सभा की अवधिः इसकी अवधि 5 वर्ष होती है। 24वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 1976 में यह अवधि 6 वर्ष कर दिया गया जिसे 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा पुनः 5 वर्ष कर दिया राज्यपाल विधानसभा को 5 वर्ष से पूर्व भी भंग कर सकता है। आपातकाल में संसद विधि द्वारा एक वर्ष का कार्यकाल बढ़ा सकती है। परन्तु, आपातकाल समाप्त होने की दशा में यह वृद्धि 6 माह से अधिक समय तक लागू नहीं कि जा सकती।

गणपूर्ति, अधिवेशनः विधान सभा की कार्यवाही तभी प्रारम्भ की जा सकती है जब समस्त संख्या की न्यूनतम 10 प्रतिशत उपस्थित हो राज्यपाल विधानसभा के अधिवेशन बुलाता है। किन्तु दो अधिवेशनों के बीच का अन्तर 6 माह से अधिक नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 176 यह उपबन्ध करता है कि प्रत्येक आम चुनाव के उपरांत, राज्यपाल, प्रथम सत्र को संबोधित करेगा।

विधानसभा के पदाधिकारी: राज्य विधानसभा में दो पदाधिकारी होते हैं- अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष। इन दोनों पदाधिकारियों का निर्वाचन विधानसभा सदस्यों द्वारा सदन की प्रथम बैठक में किया जाता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कर्तव्यों का निर्वहन करता है। यदि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो तो विधानसभा दूसरे अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। विधानसभा के बहुमत द्वारा अध्यक्ष को भी पदच्युत किया जा सकता है।

15.3.3 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

संसदीय परम्परा के अनुरूप भारत में राज्यों में कानून निर्माण का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को होता है। इन्हें सातवीं अनुसूची के राज्यसूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के कार्य और शक्तियों का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं में कर सकते है।

15.3.3.1 विधायी शक्तियाँ

राज्य विधान मण्डल को राज्य सूची के अतिरिक्त समवर्ती सूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है परन्तु संसद को भी समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार है। जिसमें यह प्रावधान है कि यदि समवर्ती सूची

के किसी विषय पर संसद और विधानमण्डल कानून बनाते हैं तो और उनमें विवाद उत्पन्न हो तो संसद द्वारा निर्मित का कानून प्रभावी होगा। कोई भी विधेयक जहाँ दो सदन है वहाँ पर दोनों द्वारा पारित होकर और जहाँ केवल विधानसभा है उसके द्वारा परित होकर, राज्यपाल की स्वीकृति मिलने पर ही कानून बनता है।

सधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई समान अधिकार नहीं है। यदि कोई विधेयक विधानपरिषद में पेश किया जाता है और विधानसभा उस विधेयक को अस्वीकार कर दे तो वह समाप्त हो जाता है।

विधानसभा में पारित करने के पश्चात जब विधेयक विधानपरिषद् में भेजा जाता है तो उसे तीन माह के भीतर वापस किया जाना आवश्यक है।

दोनों सदनों में किसी विधेयक पर असहमति होन की दशा में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं किया गया है। फलस्वरूप विधानसभा द्वारा विधेयक पर किया गया निर्णय अन्तिम होता है।

15.3.3.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

1- मंत्रीयों से नीति के विषयों पर प्रश्न पूछने का।

2- बजट पर विमर्श की शक्ति।

3- मंत्रीपरिषद् के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव।

15.3.3.3 वित्तिय शक्तियाँ निम्नलिखित है

राज्य के बजट को विधानमण्डल की स्वीकृति अनिवार्य है।विधानसभा का राज्य के धन पर पूर्ण नियन्त्रण है। राज्य के बजट को विधानमण्डल द्वारा ही स्वीकृति प्रदान की जाती है। वित्तीय मामलों में विधानसभा की शक्तियाँ विधान परिषद से अधिक हैं। संविधान के अनुसार धन विधेयक केवल विधानसभा में पेश किया जाता है इसके द्वारा पारित होने पर विधान परिषद् को भेजा जाता है। विधानसभा के किसी भी संशोधन को मानने के लिए विधानसभा बाध्य नहीं है। कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं इसका निर्धारण विधानसभा अध्यक्ष के द्वारा किया जाता है। धन विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकते है। साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। विधान परिषद के सुझावों को मानना विधानसभा में ही अनुदानों की मांगों पर मतदान बजट में निहित राशियों में कटौती, अरोपित करों में छूट दी जा सकती है। वित्त पर नियन्त्रण सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के माध्यम से किया जाता है। वित्तीय आपातकाल में ससंद राज्य विधानसभा को वित्त सम्बन्धी निर्देश दे सकती है तथा राज्य के वित्त विधेयक को अपने समक्ष प्रस्तुत करके उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राज्य विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई

(1/3) से अधिक नहीं होगी।सत्य /असत्य

2.राज्य विधान परिषद् के लिए किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। सत्य /असत्य

3.विधान परिषद् के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष होनी चाहिए। सत्य /असत्य

4.विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए। सत्य /असत्य

5.साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। सत्य /असत्य

15.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचाते है कि हमारे संविधान के द्वारा संघ के सामान राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। जहाँ पर दो सदन है वहाँ विधान परिषद, विधान सभा और राज्यपाल को मिलाकर विधानमंडल कहलाता है जिन राज्यों में विधान परिषद नहीं है वहाँ पर राज्यपाल और विधान सभा मिलकर विधान मंडल कहलाते है।

हमारे विधान मंडल में विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते है क्योंकि इनके सद्श्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। जब कि विधान परिषद के सदश्यो का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। यह एक स्थाई सदन है जिसके एक तिहाई सद्श्य प्रत्येक दो वर्ष के अंतराल पर सेवा निवृत्त होते है। यद्यपि सद्श्यों का कार्यकाल ६ वर्ष होता है।जबकि विधान सभा के सद्श्यो का कार्यकाल 5वर्ष होता है। यह कार्यकाल विधान सभा का भी है परन्तु इसके पूर्व भी कुछ दशों में इसका विघटन किया जा सकता है। हमने यह भी अध्ययन किया है इस इकाई में कि राज्य में मुख्य क़ानून निर्मात्री संस्था राज्य विधान मंडल ही है।

15.5 शब्दावली

जनप्रतिनिधि सदन - विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते है क्योंकि इनके सद्श्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

संसद – राष्ट्रपति ,राज्य सभा और लोक सभा को मिलाकर बनती है।

15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति

2. आर.एन. त्रिवेदी एवं एम.पी.राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

3.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति

15.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.ब्रज किशोर शर्मा - भारतीय संविधान

2.दुर्गादास बसु - भारतीय संविधान

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.राज्य विधान मंडल पर एक निबंध लिखिए।

2.राज्य विधान मंडल की शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई 16: स्थानीय स्वशासन: पंचायती राज संस्थाएं एवं नगरीय स्वशासन

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य
16.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन
16.5 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता
16.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें
16.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध
16.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा ?
16.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध
16.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम
16.10.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
16.10.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
16.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां
16.12 सारांश
16.13 पारिभाषिक शब्दावली
16.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.16 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.17 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

स्थानीय स्वशासन लोगों की अपनी स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है।

यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। ये समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शांति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने, तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का संम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियन्त्रण हो ताकि उसके संवर्द्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षों से अपना शासन स्वयं चलाते रहे हैं, जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे कई गांवों में परम्परागत रूप में स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1 स्थानीय स्वशासन के विषय में जान पायेंगे।
2 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंध को समझ सकेंगे।
3 स्थानीय स्वशासन की मजबूती और ग्रामीण विकास के साथ उसके संबंध को जान पाएंगे।
4 स्थानीय स्वशासन के महत्व को जानने में सक्षम होंगे।
5 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास के बीच संबंध को समझ सकेंगे।
6 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातों को जान सकेंगे।

16.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

स्थानीय स्वशासन शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर शासन के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक व्यवस्था सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समायाओं के हल का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मां गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे। भारत गावों का देश है, अतः गावों के विकास के बिना भारत की प्रगति संभव नहीं। गांधी जी गांवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे जाकि निचले स्तर पर लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसी प्रकार उनको पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबुत बनाने की वकालत की थी।

1 गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।

2 ग्रामस्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।

3 किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा? ये सभी बातें गांव वाले तय करेगें।

4 गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।

5 ऐसा शासन जहां लोग स्थानीय मुद्दों, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।

6 स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा, मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

16.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन

हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं, उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी। और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबंधन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे। लोगों को पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे। और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थी। बड़े क्षेत्र, पट्टी, तोक के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदनशील निर्णय भी पंचायतें बड़े विश्वास के साथ करती थी। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्यायें स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।

धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थायें आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गांव में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं, जिन जंगलों का हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबंधन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास संबंधी नजरिया हमारा स्वयं का था उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है। और सरकारी योजनाएं राज्य या केन्द्र में बैठकर बनाई जाने लगी और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा।

परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुँच थी, उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो। उसको पाने के लिए व्यक्ति खीचातानी में लगा रहा। इससे कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर होता गया। और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी(छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।

लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाय। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।

इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनायें, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें। इस सोच को समेटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन कर पंचायतों को नये काम और अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों की अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

16.5 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं।ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में स्थानीय एवं वाह्य संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भांति परिचित होते हैं। तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं। गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछडे वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

16.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायते स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं , और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायते स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगीं व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

16.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम हैं पंचायतें।

चूंकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती हैं अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है। पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं, विवादों का निपटारा करतें हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है। पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अतः पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूप से स्वशासन में भागीदारी होगी। इस के लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते है जब गांव के विकास संबन्धी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी। लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एकमात्र एक ऐसा मंच है जहाँ आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर स्थानीय विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबके विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

16.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?

1 .स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह निःस्वार्थ भाव वाला हो।

2.सक्रिय ग्राम सभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होंगे तभी एक सशक्त पंचायत की नींव पड़ सकती है। अतः ग्राम सभा के हर सदस्य को जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।

3 .स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्घन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अतः स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बनाकर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।

4 .स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव वासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वयन करेंगे। उपर से थोपी गई परियोजनायें कभी भी ग्रामीणों में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती, अतः सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी वास्तविक रूप से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा।

5 .पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम हैं। अतः समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया मे भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना " लोक शासन" को मूर्त रूप दे सकती है।

6 युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी हैं। इनके अन्दर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान हैं इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व उर्जा का रचनात्मक कार्यो में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

7 पंचायतीराज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाने में असमर्थ हैं।

16.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध

1 .स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक दूसरे के पूरक हैं। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।

2.स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है अतः पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।

3 .ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेंगीं। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधियों में पूर्ण नियन्त्रण।

4 .ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सब को समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गो की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।

5 .मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।

6 .स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्ण द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

अभ्यास प्रश्न-1

1. ग्राम स्वराज के पक्षधर थे?

क. तिलक ख. महात्मां गांधी

ग. जवाहर लाल नेहरु घ. सरदार पटेल

2. स्थानीय स्वशासन से संबंधित...................................... संविधान संशोधन हैं?

16.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना

की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुंचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

16.10.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1) 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2) नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।

3) यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।

4) एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।

5) इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।

6) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7) पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।

8) पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।

9) इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।

10) 73वें संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।

11)हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।

12)उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।

13)पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।

14)हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

कुल मिलाकर संविधान के 73वें संशोधन ने नवीन पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न सिर्फ पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर, दलित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

16.10.2 चौहतरवें (74) वें संविधान संशोधन में मुख्य बातें

1) संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

2) इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है

3) नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।

4) समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

5) 74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6) इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

7) देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

8) नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

9) नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

10) समाज की कमजोर जनता का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

11) प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

12) सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

16.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गावों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुंचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं का बेहतर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। नई पंचायती राज व्यवस्था से अनेक अपेक्षाएं हैं। इस आधार पर स्थानीय स्वशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाना।

2. लोगों की समस्याओं को समझना ओर उसके हल के लिए योजनाएं बनाना।

3. दुर्गम व दुरस्थ गावों तक राजनीतिक समझ को परिपक्व करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।

4. सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों का प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना।

5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रुप से सक्रिय करना तथा उनका सर्वांगिण विकास करना।

किन्तु स्थानीय स्वशासन के लिए यह मार्ग चुनौतियों से भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक वर्षों में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज की असफलता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। वर्तमान में पंचायजी राज व्यवस्था के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हैं।

1. स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी है, तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

2. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के प्रशिक्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं।

3. पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, परन्तु महिलाएं आज भी इस व्यवस्था में स्वतंत्र होकर व स्व निर्णय लेकर कार्य नहीं कर पा रही हैं।

4. पंचायती राज व्यवस्था में धन व शक्ति के दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं, इससे निपटना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य है।

पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरुक होना जरुरी है। साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को को भी अपना दायित्व सक्रियता से निभाना होगा तथा उन्हें जाति, धर्म व सम्प्रदाय से उपर उठ कर विकास कार्यो पर अपना ध्यान लगाना होगा।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 73वॉं संविधान संशोधन किस से संबंधित है।

क)पंचायतों ख) नगर निकायों ग) संविधान सभा घ)शिक्षण संस्थाओं

2. किस संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया?

3. नगर निकायों से संबंधित ै संविधान संशोधन ह ....?

16.12 सारांश

शासन-प्रणाली के उपलब्ध रुपों में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली सर्वोच्च व उत्तम है क्यों कि इस शासन प्रणाली में जनता की भागीदारी सुनिश्चित रहती है। जनता की भागीदारी को अधिक मजबुत बनाने और शासन में उनकी पहुँच को सुलभ बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन की कल्पना को साकार करने के लिए संविधान में 73वां और 74वॉं संसोधन किया गया।

73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायतों व जिला स्तर पर जिला परिषदों व शहरी स्तर पर नगर पालिका, नगर परिषद, नगर पंचायत व नगर परिषदों का गठन कर स्थानीय स्वशासन को साकार रुप दिया गया। स्थानीय स्वशासन के इन रुपों के माध्यम से स्थानीय लोगों की शासन-सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर जनहित के कार्यों में सक्रियता, निचले स्तर पर शासन में भागीदारी और और समस्याओं का निराकरण, यहि स्थानीय स्वशासन का ध्येय है।

16.13 शब्दावली

संवर्द्धन- वृद्धि या विकास

वाह्य- बाहरी या अन्य

सूक्ष्म नियोजन- योजनाओं का छोटे रुप में लागू होना

त्रिस्तरीय- तीन स्तर

16.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 1. ख. महात्मां गाँधी 2. 73वां व 74वां संविधान संशोधन

अभ्यास प्रश्न-2 1. क) पंचायतों से 2. 73वां संविधान संशोधन 3. 74वां संविधान संशोधन

16.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायती राज प्रशिक्षण सन्दर्भ सामाग्री ,2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

2. पंचायती राज प्रशिक्षण मार्गदर्शिका ,2004 हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

3. जल, जंगल व जमीन पर ग्राम पंचायतों के अधिकारों की नीतिगत स्तर पर पैरवी, 2002, हार्क देहरादून एवं प्रिया नई दिल्ली

16.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

भारत में पंचायती राज- डॉ0 के0 के0 शर्मा

भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

16.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन से क्या तात्पर्य है? स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंधों को स्पष्ट करें।

2. स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता क्यों है? स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंधों की चर्चा करें।

3. 73वें व 74वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

4. स्थानीय स्वशासन की विशेषताओं और चुनौतियों को स्पष्ट करें